वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६० अंक २
फरवरी २०२२

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६०

अंक २

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

माघ, सम्वत् २०७८
फरवरी २०२२

अनुक्रमणिका

* विवेकानन्द के ज्वलन्त मन्त्र ५४
* सत्यं शिवं सुन्दरं की अभिव्यक्ति : माँ सरस्वती (डॉ. जया सिंह) ५७
* (बच्चों का आंगन) जंगल से पद्मश्री तक (स्वामी पद्माक्षानन्द) ६८
* जग में बैरी कोई नहीं (डॉ. रामनिवास) ६९
* (युवा प्रांगण) जीवन की सफलता में दिव्यांगता बाधक नहीं : उम्मुल खेर (स्वामी गुणदानन्द) ७६
* साधना का फल तो तुम्हें मिल रहा है (स्वामी अद्भुतानन्द) ८०
* और पत्थर तैरने लगा (सन्तोष मालवीय, 'प्रेमी') ८४
* लक्ष्य अवश्य मिलेगा (स्वामी सत्यरूपानन्द) ९०
* (कविता) माँ सरस्वति चिर कृपामयि (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ६४
* (कविता) जय सरस्वती माँ बुद्धिदायिनी (आनन्द तिवारी पौराणिक) ६४
* पुस्तक प्राप्ति ६८
* सदैव ईश-भाव ८९

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ५३
पुरुखों की थाती ५३
सम्पादकीय ५५
वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ ५९
श्रीरामकृष्ण-गीता ६४
आध्यात्मिक जिज्ञासा ६५
रामराज्य का स्वरूप ७३
प्रश्नोपनिषद् ७९
सारगाछी की स्मृतियाँ ८१
गीतातत्त्व-चिन्तन ८५
साधुओं के पावन प्रसंग ९१
समाचार और सूचनाएँ ९४

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५, ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com**
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
वेबसाइट : www.rkmraipur.org रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : रायपुर (छत्तीसगढ़)
अकाउण्ट नम्बर : 1 3 8 5 1 1 6 1 2 4
IFSC : CBIN0280804

* कृपया सदस्यता राशि जमा करने के बाद इसकी सूचना हमें तुरन्त **फोन, मोबाईल, एस.एम.एस., व्हाट्सएप, ई-मेल** अथवा **स्कैन द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड नं.** के साथ भेजें।
* विवेक-ज्योति पत्रिका के सदस्या किसी भी माह से बन सकते हैं।
* पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूर्ण होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।
* विवेक-ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमियता के कारण कई बार पत्रिका सदस्यों को नहीं मिलती है, अत: पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे कई सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है। पत्रिका न मिलने की शिकायत माह के अंत में ही करें। अंक उपलब्ध होने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।
* सदस्यता, एजेन्सी, विज्ञापन एवं अन्य विषयों की जानकारी के लिए 'व्यस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

फरवरी माह के जयन्ती और त्यौहार

२	स्वामी ब्रह्मानन्द
४	स्वामी त्रिगुणातीतानन्द
५	सरस्वती पूजा
८	नर्मदा जयन्ती
१६	स्वामी अद्भुतानन्द
१२, २७	एकादशी

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर माँ सरस्वती का चित्र, जो विवेकानन्द विद्यापिठ, रायपुर के मन्दिर से लिया गया है।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा (उ.ख.)	२,१००/-

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६७४. श्री केजुराम साहू, पचपेड़ी नाका चौक, रायपुर (छ.ग.)	'प्राचार्य,' शा.उ.मा. शाला, बेलरगाँव, जिला – धमतरी (छ.ग.)
६७५. '' ''	'प्राचार्य' शा.उ.मा. शाला, गुरुर, जिला – बालोद (छ.ग.)

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **– व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर' !

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com

Toll Free
1800 233 4545

E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६० **फरवरी २०२२** **अंक २**

सरस्वती वन्दना

प्रणत-हृदयपद्मन्यस्तपादाब्जयुग्मा
मधुरवचनगर्भां बिभ्रती कण्ठवीणाम्।
रुचिरविमलकान्तिर्ज्ञानभक्तिप्रदात्रीं
निखिलभुवनपूज्या शारदा शारदैव।।

– जिन्होंने भक्तों के हृदयकमल में अपने दोनों चरणकमल स्थापित किये हैं एवं जो मधुर वचनपूर्ण कण्ठ रूपी वीणा धारण किये हुये हैं, सुन्दर एवं विमल कान्ति-विशिष्टा ज्ञानभक्तिप्रदायिनी एवं अनन्त जगत की पूजनीया वे ही शारदा अर्थात् सरस्वती हैं।

पुरखों की थाती

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।।७५०।।

(चाणक्य)

– व्यक्ति के बीमार पड़ने पर, दुःख के दिन आने पर, अकाल पड़ने पर, शत्रुओं का भय होने पर, राजा के दरबार में जाते समय और मृत्यु के बाद श्मशान जाते समय जो साथ दे, वही सच्चा मित्र और बन्धु है।

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम।
दारिद्र्यरोग दुःखानि बन्धनव्यसनानि च।।७५१।।

(चाणक्य)

– निर्धनता, रोग, दुःख-कष्ट, बन्धन और बुरी आदतें – ये सभी व्यक्ति के अपने ही (पहले किये हुए) कर्मों के फल से ही होते हैं।

आशैव राक्षसी पुंसामाशैव विषमञ्जरी।
आशैव जीर्णमदिरा नैराश्यं परमं सुखम्।।७५२।।

– व्यक्ति के लिए आशा ही राक्षसी है, आशा ही विष की बेल है, आशा ही सड़ी हुई मदिरा है और नैराश्य अर्थात् आशा का त्याग ही परम सुख का कारण है।

विवेकानन्द के ज्वलन्त मन्त्र

* मैं चुनौती देता हूँ कि कोई भी व्यक्ति भारत के राष्ट्रीय जीवन का कोई भी ऐसा काल मुझे दिखा दे, जिसमें यहाँ समस्त संसार को हिला देने की क्षमता रखनेवाले आध्यात्मिक महापुरुषों का अभाव हो।

* हमारी इस मातृभूमि में इस समय भी धर्म और अध्यात्म विद्या का जो स्रोत बहता है, उसकी बाढ़ समस्त जगत् को आप्लावित कर, राजनीतिक उच्चाभिलाषाओं एवं नवीन सामाजिक संगठनों की चेष्टाओं में प्राय: समाप्तप्राय, अर्धमृत तथा पतनोन्मुखी पाश्चात्य और दूसरी जातियों में नव-जीवन का संचार करेगी।

* हमारी कार्य-विधि बहुत सरलता से बतायी जा सकती है। वह केवल राष्ट्रीय जीवन को पुन: स्थापित करना है। भेद यहाँ है। भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं : त्याग और सेवा। आप इसकी इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न कीजिए और शेष सब अपने आप ठीक हो जायेगा। इस देश में आध्यात्मिकता का झंडा कितना ही उँचा क्यों न किया जाय, वह पर्याप्त नहीं होता। केवल इसी में भारत का उद्धार है।

* देशभक्त बनो – जिस जाति ने अतीत में हमारे लिए इतने बड़े-बड़े काम किये हैं, उसे प्राणों से अधिक प्यारी समझो। हे स्वदेशवासियों ! मैं संसार के अन्यान्य राष्ट्रों के साथ अपने राष्ट्र की जितनी ही अधिक तुलना करता हूँ, उतना ही अधिक तुम लोगों के प्रति मेरा प्यार बढ़ता जाता है। तुम लोग शुद्ध, शान्त और सत्स्वभाव हो और तुम्हीं लोग सदा अत्याचारों से पीड़ित रहते आये हो, इस मायामय जड़ जगत् की पहेली ही कुछ ऐसी है। जो हो, तुम इसकी परवाह मत करो! अन्त में आत्मा की ही जय अवश्य होगी। इस बीच आओ हम काम में संलग्न हो जायँ। केवल देश की निन्दा करने से काम नहीं चलने का। हमारी इस परम पवित्र मातृभूमि के काल-जर्जर कर्मजीर्ण आचारों और प्रथाओं की निन्दा मत करो।

* एक विचार लो, उसी विचार को अपना जीवन बनाओ – उसी का चिन्तन करो, उसी का स्वप्न देखो और उसी में जीवन बिताओ। तुम्हारा मस्तिष्क, स्नायु, शरीर के सर्वाङ्ग उसी विचार से पूर्ण रहें। दूसरे सारे विचार छोड़ दो। यही सिद्ध होने का उपाय है और इसी उपाय से बड़े बड़े धर्मवीरों की उत्पत्ति हुई है।

* यह एक बड़ा सत्य है कि बल ही जीवन है और दुर्बलता ही मरण। बल ही अनन्त सुख है, अमर और शाश्वत जीवन है और दुर्बलता ही मृत्यु।

सम्पादकीय

नर्मदा जयन्ती विशेष

पाप-मोचिनी मोक्षविधायिनी : अमर माँ नर्मदा

नर्मदा माँ

जब भगीरथ ने कठोर तप किया, तब सगर-सुतों के उद्धारार्थ भगवान विष्णु के पावन पद से निःसृत माँ गंगा ने शिव की जटा से होते हुए पृथ्वी पर अवतरण किया और सगर-सन्ततियों का उद्धार कर उन्हें कृतार्थ किया। किन्तु जब स्वयं ब्रह्मा-विष्णु, इन्द्र-चन्द्रादि देवगण पापग्रस्त हुए और सभी देवताओं ने समवेत स्वर में विष्णु भगवान से प्रार्थना की, तब भगवान विष्णु ने मेकल गिरि अर्थात् अमरकण्टक पर्वत पर विराजित भगवान शिव से विनम्रता से इसका उपाय पूछा। सदा परम दयालु भगवान शिव करुणाविगलित हो गये। तब उनके मस्तक में सुशोभित सोमकला से एक बिन्दु पृथ्वी पर पड़ी। वह बिन्दु देवताओं के समक्ष धरती स्पर्श करते ही कन्या रूप में प्रकट हुई –

नीलोत्पलदलश्यामा सर्वावयवसुन्दरी।
सुद्विजा सुमुखी बाला सर्वाभरणभूषिता।।

– नील कमलदल सदृश श्यामवर्ण, सर्वांग सुन्दर, सुदन्तयुक्त सुमुखी बालिका सम्पूर्ण अलंकारों से युक्त थी। वह सुन्दर बालिका अन्य कोई नहीं, जगदुद्धारिणी, संकटनाशिनी, लोक कल्याणप्रवाहिनी लोकमंगलकारिणी हमारी नर्मदा मैया थीं।

शंकरजी की पुत्री हैं, तो विभिन्न आभरणों से अलंकृत होना कोई बड़ी बात नहीं है। शंकरजी तपस्वी हैं, अपरिग्रही हैं, लेकिन अपने परिवार का पूरा ध्यान रखते हैं। आप देख लीजिये। शंकरजी शिवरात्रि या श्रावण में जहाँ भी उनकी पूजा हो, वहाँ बेलपत्ता, जल-दूध-घी-मधु आदि से सन्तुष्ट हो जाते हैं। लेकिन अपनी प्रिय पत्नी और हमारी माँ पार्वती के लिये उन्होंने सारी व्यवस्था कर रखी है। आश्विन नवरात्रि में फल-मिठाई, सर्वान्न भोग और भी बहुत कुछ जहाँ जो भोगरूप में चढ़े, सब खाने की व्यवस्था की है। शंकरजी का वाहन नन्दी, लेकिन माँ का वाहन सिंह, सबसे शक्तिशाली और गतिमान राफेल। दोनों पुत्रों गणेश और कार्तिकेय को भी यथायोग्य वाहन और भोग में सभी प्रकार के फल-मिठाई, अन्न-भोग की व्यवस्था है। शिवजी स्वयं भले ही दिगम्बर रहते हों, किन्तु प्रिया और पुत्रों के वस्त्राभरण की सारी व्यवस्था भक्तों से कर रखी है। उनकी अपनी कोई आवश्यकता नहीं, किन्तु परिवार की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। ऐसे हमारे शिवजी हैं ! तो माँ नर्मदाजी भी प्रगट हुई, तो समस्त आभरणों से सुसज्जित थीं।

माँ नर्मदा ! बड़ा प्रिय, पावन और श्रद्धेय नाम है ! सुरों की पापनाशिनी, दोषनाशिनी माँ नर्मदा ! ऋषिकुलतारिणी, ऋषि-मुनियों की मोक्षप्रदायिनी माँ नर्मदा ! भक्तों की भक्तिवर्द्धिनी माँ नर्मदा ! जन-साधारण को ऐश्वर्य-सुख-भोग प्रदायिनी माँ नर्मदा ! ग्राम-ग्राम, वन-अरण्य, गिरि-प्रान्तर में विहारिणी माँ नर्मदा ! सर्वत्र पुण्यशालिनी माँ नर्मदा ! ऐसी महिमामयी हैं हमारी माँ नर्मदा !

माँ नर्मदा एक किन्तु इनके नाम अनेक हैं। जैसे शास्त्रों में कहा गया एक ईश्वर के अनेक नाम। **एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति** – एक ईश्वर को ऋषि लोग विभिन्न नामों से पुकारते हैं। वैसे ही नर्मदा एक, किन्तु उनके नाम अनेक हैं। शिवविग्रह उद्भूता, शिव जटावाहिनी होने से जटाशंकरी, अत्यन्त वेगवती होने से रेवा, अमर अमरणशीला होने से नर्मदा, शिव की सोमकला से प्रगट होने के कराण सोमोद्भवा, मेकल पर्वत के द्वारा वेग धारण करने के कारण मेकल सुता आदि इनके नाम हैं। इन्हें दक्षिण गंगा भी कहते हैं। एक बार नर्मदा मैया ने भगवान शिव से प्रार्थना की –

स्वर्गादागम्य गंगेति यथाख्याता क्षितौ विभो।
तथा दक्षिणगंगेति भवेयं त्रिदशेश्वर।।

– हे महादेव ! जिस प्रकार गंगा स्वर्ग से आकर पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुई, उसी प्रकार मेरी ख्याति दक्षिण गंगा से हो। भगवान शिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और ये दक्षिण गंगा से भी संज्ञित हुईं।

भगवान शिव अमरकण्टक में विराजमान थे, वहीं नर्मदा प्रकट हुईं। आज भी नर्मदा मैया का उद्गम स्थल अमरकण्टक में है, जहाँ लाखों की संख्या में आबालवृद्ध दर्शन-स्नान कर धन्य होते हैं।

माँ गंगा और नर्मदा मैया दोनों मानव के कल्मषों का

नाश कर पवित्र करती हैं। गंगा गंगोत्री से निकली हैं और नर्मदा अमरकण्टक से। दोनों माताओं का उद्देश्य जीवनोद्धार होते हुए भी अपनी कुछ विशेषताएँ, लोकप्रियता और लोककल्याण के कारण नर्मदा मैया जन-जन के हृदय में बसी हुई हैं।

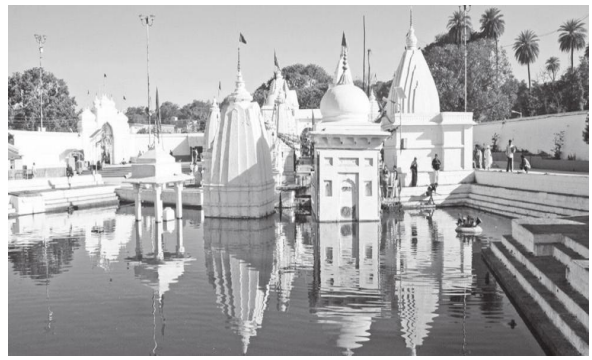
माँ नर्मदा के उद्गम स्थल, अमरकण्टक

रेवाखण्ड में नर्मदा की विशेषता पृथक रूप से वर्णित है। उनकी नित्यता का स्पष्ट वर्णन है –

समुद्राः सरितः सर्वाः कल्पे-कल्पे क्षयं गताः।
सप्तकल्पक्षये क्षीणे न मृता तेन नर्मदा।।

– प्रलय काल में समस्त सागर और सरिताएँ स्वरूप से क्षीण होकर नष्ट हो जाती हैं, किन्तु सात कल्प पर्यन्त यह रेवा नष्ट नहीं हुई। इसलिये इसका नाम नर्मदा (न मरनेवाली) हुआ। नर्मदा मैया की महिमा के सम्बन्ध में यहाँ तक कहा गया कि –

त्रिभिः सारस्वतं पुण्यं सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गङ्गेयं दर्शनादेव नर्मदा।।
गंगा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा।।

– माँ सरस्वती का जल तीन दिन में, यमुनाजी का जल एक सप्ताह में पवित्र करता है और गंगाजी का जल स्नान करने से तुरन्त पवित्र करता है। किन्तु नर्मदा मैया दर्शन मात्र से मानव को पवित्र करती हैं। गंगा कनखल (हरिद्वार) में, सरस्वती कुरुक्षेत्र में विशेष रूप से पुण्यरूपा हैं, परन्तु नर्मदा मैया ग्राम में, वन में कहीं भी प्रवाहित हों, वे सर्वत्र पुण्यमयी हैं। ऐसी महिमा है हमारी नर्मदा मैया की !

स्मरणाज्जन्मजं पापं दर्शनेन त्रिजन्मजम्।
स्नानाज्जन्मसहस्राख्यं हन्ति रेवा कलौ युगे।।

– माँ नर्मदा स्मरण करने से इस जन्म के, दर्शन करने से तीन जन्म के और स्नान करने से सहस्रों जन्मों के पापों को कलियुग में नष्ट कर देती हैं।

प्राचीन काल से और अभी भी तपस्वी ऋषि-मुनि माँ नर्मदा के तट पर तपस्या करते चले आ रहे हैं। इसलिए भक्तों में भक्ति-वर्द्धन एवं विश्वास दृढ़ होने के लिये सन्त-महात्मा लोगों को नर्मदा-परिक्रमा करने का परामर्श देते हैं। सन्त-भक्त मैया पर पूरा विश्वास कर मैया की परिक्रमा के लिये खाली हाथ निकलते हैं और मैया उनका योग-क्षेम वहन करती हैं, तन-मन-बुद्धि को पवित्र करती हैं, किसी-किसी को दर्शन देती हैं, किसी-किसी को अपनी विशेष महिमा का बोध कराती हैं और उनकी मनोकामना पूर्ण करती हैं।

माँ अमरकण्टक के अपने उद्गम स्थल से कितने छोटे रूप में निकलती हैं और बाद में कितना विशाल हो जाती हैं। हों भी क्यों न। पिता के पास पुत्री सदा छोटी लाड़ली ही रहती है और बाद में वह पिता के आश्रय से विशाल, महान हो जाती है। माँ वहाँ से बड़ी विनम्रतापूर्वक शान्ति से प्रस्थान करती हैं, मानो छोटी बच्ची क्रीड़ा हेतु घर से चुपचाप निकलती हो और खेल के मैदान में शेरनी की वीरता का प्रदर्शन करती हो। माँ नर्मदा भी वहाँ से शान्ति से निकलती हैं और आगे लोक-रणांगण में विविध लीलाएँ करती हुई कहीं उछलती-कूदती हुई गुजरात में सागर में जाकर उसमें एकाकार हो जाती हैं। उद्गम और सागर के बीच की यात्रा में माँ ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में स्वयं जनमानस तक पहुँचकर उन्हें भक्ति और अन्नोपज वृद्धि में सहायता करती हैं, ऋषि मुनियों की कुटियाओं, राजमहलों से होती हुई गरीबों की झोपड़ियों से भी गुजरती हैं और उन्हें मनोवांछित फल प्रदान कर सुखी करती हैं। माँ अपने भक्तों की सदा जल-थल-गिरि गह्वर-सर्वत्र रक्षा करती हैं। हे माँ ! धरा के जीवों पर तेरे अनन्त उपकार हैं, जो अवर्णनीय और अकथ्य हैं। हे माँ हम तुमसे प्रार्थना करते हैं –

सरिद्वरे ! पापहरे ! विचित्रिते !
गन्धर्व यक्षोरग-सेवितांगे !
सनातनि प्राणगणानुकम्पिनी !
मोक्षप्रदे देवि विधेहि शं नः।।

– हे सरिद्वरे नर्मदे ! तुम सकल पापहारिणी और विलक्षण हो ! गन्धर्व, यक्ष और नाग-देवताओं से सेवित प्राणियों पर दयानुग्रहकारिणि, सनातनि, हे मोक्षदायिनी तुम हम सबका कल्याण करो ! ○○○

सरस्वती जयन्ती विशेष

सत्यं शिवं सुन्दरं की अभिव्यक्ति : माँ सरस्वती

डॉ. जया सिंह

प्रो. आइसीएफआई विश्वविद्यालय, रायपुर

वागीश वीणादायिनी सद्बुद्धि प्रदायिनी
चरणों में शरण दे, नमन स्वीकारिए।
ज्ञानधन दीप्त कर, उर में आनन्द भर
नाशकर कुबुद्धि का आज हमें तारिये।।

माँ सरस्वती ज्ञान, संगीत, बुद्धि एवं कला की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं। सरस्वती का अर्थ है 'गतिमती'। वागीश्वरी या सरस्वती आध्यात्मिक दृष्टि से ब्रह्म को सक्रियता प्रदान करती हैं, जिन्हें ईश्वरी, भारती, भाषा, महाश्वेता, ब्राह्मी, वाणी, विधात्री, वागीशा, वागीश्वरी, वीणापाणि, शारदा, जगदव्यापिनी, महाप्रदा, आद्या, गिरा, श्री, वरप्रदा, श्रीप्रदा शिवानुजा, रमा, परा, महाविद्या, ज्ञानमुद्रा जैसे १०८ नामों से पुकारा जाता है।

सरस्वती माँ की मूर्ति, रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्टस् होम, चैन्नई

सरस्वती का उज्ज्वल वर्ण ज्योतिर्मय ब्रह्म का प्रतीक है। चार भुजाएँ चारों दिशाओं की प्रतीक हैं, जो सर्वव्यापी होने का संकेत देते हैं, हाथ में पुस्तक, ज्ञान-प्राप्ति का प्रधान साधन विद्यमान है, आध्यात्मिक दृष्टि से देखें, तो सर्वज्ञानमय स्वरूप। दूसरे हाथ में माला, जो एकाग्रता का प्रतीक है। सूक्ष्म दृष्टि से देखें, तो विष्णु की वैजयन्ती एवं काली की मुण्डमाला एवं विश्वजननी मातृका की माला है। दोनों हाथों से वीणा-धारण करना जीवन-संगीत का प्रतीक है। जीवन की जितनी भी क्रियायें एवं विचार हैं, उनका सृजनात्मक नादरूप महाविश्व संगीत में दिखाई देता है।

माँ सरस्वती कमल रूपी आसन में ज्ञान-मुद्रा में अवस्थित हैं। कमल सम्पूर्ण सृष्टि का प्रतीक है। संकेत है कि यही अभीष्ट है, महाविद्या शक्ति सारी सृष्टि में व्याप्त है। कमल से निर्लिप्त होने का भाव प्रकट होता है, सृष्टि में होकर भी मुक्त रहने की ओर संकेत है। सरस्वती का वाहन हंस, निष्कलंक चरित्र एवं गुण-दोष विवेचन की समर्थता सिद्ध करते हैं।

'नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।'

अर्थात् हंस में ऐसा विवेक होता है, वह दूध और पानी को पहचान लेता है। सरस्वती का वाहन हंस हमें यही संदेश देता है कि हम पवित्र और श्रद्धावान बनकर ज्ञान प्राप्त करें एवं अपने जीवन को सफलता की दिशा में ले जायें।

हिन्दू धर्म की वैदिक एवं पौराणिक देवियों में से एक नाम माँ सरस्वती का है। सनातन धर्मशास्त्र में दो सरस्वती का वर्णन परिलक्षित होता है। एक ब्रह्मा पत्नी सरस्वती एवं एक ब्रह्मापुत्री तथा विष्णु पत्नी सरस्वती, जो ब्रह्माजी की जिह्वा से प्रकट होने के कारण सरस्वती मानी गई।

धर्म-शास्त्रों में ये प्रकृति, शक्ति, ब्रह्मज्ञान, विद्या एवं संगीत की अधिष्ठात्री मानी गई हैं। माँ सरस्वती के सन्दर्भ में कई मत-मतान्तर भी हैं। देवी सरस्वती का वर्णन वेदों के मेधासूक्त में, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत पुराण में मिलता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी सरस्वती का विशेष उल्लेख है।

ऋग्वेद में भगवती सरस्वती का वर्णन करते हुए कहा गया – **प्रणो देवी सरस्वती ...** अर्थात् वह परम चेतना है। सरस्वती रूप में ये हमारी बुद्धि, प्रज्ञा एवं मनोवृत्ति की संरक्षिका हैं। हमारे भीतर जो संचार मेधा है, उसका आधार सरस्वती ही हैं।

माँ सरस्वती को साहित्य, संगीत एवं कला के रूप में पूजा जाता है। वस्तुतः उसमें विचारणा, भावना एवं संवेदना की त्रिविधा है। तात्पर्य वीणा संगीत की, पुस्तक विचारों की एवं हंस कला की अभिव्यक्ति के रूप में विद्यमान है।

'याकुन्देन्दुतुषारहारधवला' ... ये पंक्तियाँ भावार्थ देती हैं, जो विद्या की देवी सरस्वती कुंद के फूल, चंद्रमा की हिमराशि और मोती के हार की तरह धवल वर्णा हैं, हमारी सम्पूर्ण जड़ता और अज्ञान को दूर करनेवाली हैं, वह माँ सरस्वती हैं।

ऐसा माना जाता है कि ब्रह्माजी के मुख से बसन्त पंचमी के दिन माँ सरस्वती का उद्‌गम हुआ। इस हेतु बसन्त पंचमी को 'विद्या जयन्ती' भी कहा जाता है।

बसन्त का शुभागमन माँ सरस्वती की पूजा के साथ आरम्भ होता है। पूरी प्रकृति अपनी वास्तविक छटा से सबका मन मोह लेती है। बसंती बयार अपने मंद-मंद झोंको से सबको आकर्षित करती है। लता-वल्लरियों में नई-नई कोंपलें उग आती हैं। आम्र-वृक्ष में सुन्दर बौर आते हैं, उस पर कोयल की कूक, भ्रमरों की गुंजन से सम्पूर्ण प्रकृति अत्यन्त रमणीय हो जाती है। बसंत पीले रंग के परिधान को सुशोभित करनेवाला है, यह रंग समृद्धि, प्रकाश, ऊर्जा एवं आशावादी होने का प्रतीक है।

बसन्त पंचमी को एक सांस्कृतिक पर्व के रूप में मनाया जाता है, जिसमें सरस्वती के रूप में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' द्वारा संसार में सुख, शान्ति और सौन्दर्य का सृजन किया जाता है। माँ सरस्वती हमारे अन्तरतम के अज्ञान को दूर कर ज्ञान का दीपक जलाती हैं।

इसी दिन से जुड़ी एक परम्परा है, जो अत्यन्त प्रचलित एवं प्रमुख है, वह है अध्ययन आरम्भ करने का दिन। छोटे-छोटे बच्चे बसन्त पंचमी के दिन से ही लिखना प्रारम्भ करते हैं। शिक्षा जो मानव को मनुष्य बनाती है, मन में सकारात्मक विचारों का सृजन कराती है। मनन से मनुष्य उत्कृष्ट बनता है और मनन बुद्धि का विषय है। अतएव किसी भी तरह से बौद्धिक विकास को जन-जन तक समझाने के लिए किसी भी शैक्षिक कार्य में प्रथम चरण में माँ सरस्वती की पूजा-अर्चना की परम्परा भारतीय संस्कृति का परिचय देती है।

सर्दियों को विदा कर प्रकृति को परिपूर्ण करनेवाला बसन्त। बर्फ के बादलों के नीचे जो प्रकृति छिपी होती है, वह बाहर आती है, इन दिनों इसकी सुन्दरता अपने परिपक्व रूप में दृष्टिगोचर होती है। बसन्त का आनन्द मनुष्य ही नहीं, वरन् जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे भी लेते हैं।

ईश्वरीय उपासना की प्रक्रिया भाव-विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है। श्रद्धा और तन्मयता से की जानेवाली साधन-प्रक्रिया एक विशेष शक्ति है। एक ओर बौद्धिक क्षमता विकसित करने, चित्त की चंचलता एवं अस्वस्थता दूर करने के लिए सरस्वती की साधना का विशेष महत्त्व है, तो वहीं दूसरी ओर शिक्षा के प्रति जन-जन के मन में अधिक उत्साह भरने, लौकिक अध्ययन एवं आध्यात्मिक स्वाध्याय की उपयोगिता को और अधिक गम्भीरता से समझने हेतु सरस्वती पूजन की परम्परा है।

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणा-पुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम्
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।।

अर्थात् – शुक्ल वर्ण वाली, सम्पूर्ण चराचर जगत् में व्याप्त, आदिशक्ति, परब्रह्म के विषय में किए गए विचार एवं चिन्तन के सार रूप परम उत्कर्ष को धारण करनेवाली, सभी भयों से अभय दान देनेवाली, अज्ञान के अँधेरे को मिटानेवाली, हाथ में वीणा, पुस्तक और स्फटिक की माला धारण करनेवाली और पद्मासन पर विराजमान बुद्धि प्रदान करनेवाली, सर्वोच्च ऐश्वर्य से अलंकृत, भगवती शारदा की मैं वन्दना करता हूँ।

किम्वदन्ती अनुसार हरियाणा के कुरुक्षेत्र जिले के पौराणिक नगर पिहोवा में सरस्वतीजी की विशेष पूजा अर्चना

माँ सरस्वती मन्दिर, पिहोवा, कुरुक्षेत्र, हरियाणा

होती है। पिहोवा को सरस्वती का नगर भी माना जाता है।

शेष भाग पृष्ठ ७८ पर

वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ (७)

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। वे लुसाका और चण्डीगढ़ के अध्यक्ष और वेदान्त केसरी के सम्पादक थे। वे कई वरिष्ठ संन्यासियों के सान्निध्य में आये और उनकी मधुर स्मृतियों को लिपिबद्ध किया है। इसका हिन्दी अनुवाद श्री रामकुमार गौड़, वाराणसी ने किया है। – सं.)

स्वामी अपर्णानन्द (सत्य महाराज)

मैंने स्वामी अपर्णानन्द जी को सर्वप्रथम इन्दौर में देखा था, जब वे स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी से मिलने आये थे और वहाँ चार दिनों तक रहे थे। किन्तु मैं उनसे १९६८-६९ में घनिष्ठतर रूप से दिल्ली में तब मिला था, जब मैं एम्स (दिल्ली) में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा था और वे वहाँ उपचार के लिए आए थे तथा दिल्ली आश्रम में ठहरे हुए थे। जब भी वे अस्पताल में भर्ती होते थे, तब मैं उनसे मिलने जाया करता था और प्राय: दिल्ली आश्रम में भी उनसे मिला था। जब भी मैं उनसे आश्रम में मिलता था, तब वे मुझे कुछ फल, मिठाई आदि दिया करते थे। मैंने उनसे श्रीश्रीमाँ सारदा के संस्मरण पूछे, तो उन्होंने इस प्रकार बताया था –

''मैं सर्वप्रथम अपने दो मित्रों के साथ बेलूड़ मठ गया। हम लोग नाव से गंगा पार करके मठ के घाट पर पहुँचे। हमने देखा कि आगन्तुक कक्ष में भजन गाए जा रहे थे। (जैसा अभी भी होता है) जब हम द्वार पर खड़े होकर भजन सुन रहे थे, तब एक स्वामीजी ने अन्दर से आकर मेरा आलिंगन किया। फिर उन्होंने हमें पुराने मन्दिर में जाकर ठाकुर को प्रणाम करने को कहा। बाद में हमें पता चला कि वे स्वामी प्रेमानन्द जी थे।

''इसके बाद हम लोगों ने जयरामवाटी जाकर श्रीश्रीमाँ से दीक्षा लेने का निश्चय किया। हम तीनों बस से आरामबाग गए। आरामबाग में श्रीश्रीमाँ के एक भक्त थे, जो जयरामवाटी और कामारपुकुर जानेवाले भक्तों के रहने का प्रबन्ध कर दिया करते थे। हम लोग रात में उनके घर ठहरे। भोर में हम लोग इस निश्चय के साथ जयरामवाटी को चल पड़े कि श्रीश्रीमाँ का दर्शन किए बिना अन्न-जल नहीं ग्रहण करेंगे। जब हम लोग लगभग दोपहर में जयरामवाटी पहुँचे, तो गाँव के बाहर एक पेड़ के नीचे तीन वृद्ध महिलाओं को बैठे हुए पाया। सभी महिलाएँ सफेद साड़ियाँ पहने थीं। हममें से एक मित्र श्रीश्रीमाँ से पहले मिल चुका था और उसने दूर से ही बीच में बैठी महिला को श्रीश्रीमाँ के रूप में पहचान लिया। हमलोगों के वहाँ पहुँचने पर एक महिला उठकर तेजी से हमलोगों के पास आकर डाँटते हुए हमसे कहने लगीं, ''तुम लोगों की यह कैसी मूर्खता है कि बिना अन्न खाए इस तरह पैदल चले आए ! माँ ने भी सुबह से कुछ नहीं खाया है ! वे बस यही कहती जा रही हैं कि मेरे ३ बेटे यहाँ आ रहे हैं और उन लोगों ने कुछ नहीं खाया है, तो मैं कैसे खा सकती हूँ? जाओ, पहले जाकर तालाब में स्नान करो और फिर भोजन करो। इसके बाद तुम लोग माँ को प्रणाम कर सकते हो। हमने वैसा ही किया। श्रीश्रीमाँ और अन्य महिलाओं तथा हम तीनों ने एक साथ भोजन किया। जिस महिला ने हमें फटकारा था, वे गोलाप माँ थीं।

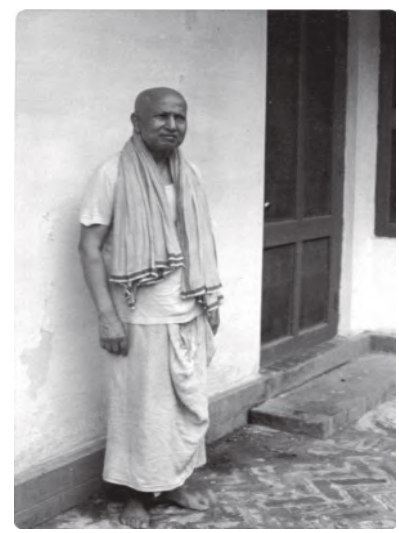

स्वामी अपर्णानन्द (सत्य महाराज)

''एक दिन हम तीनों की दीक्षा हो गई। हम लोग एक-एक करके मन्दिर में बुलाए गए और श्रीश्रीमाँ ने मंत्र दिया। मैं अन्त में गया। मंत्रदीक्षा के बाद, अपने मित्रों के समान मैं भी बड़े आनन्द से भर गया। उसके बाद श्रीश्रीमाँ ने मुझे बताया, दूसरों के दोष मत देखो। अपनी स्वयं की गलतियों को देखो।''

मैं इस वर्णन को सुन रहा था। मैंने उनसे पूछा कि यह श्रीश्रीमाँ का अन्तिम सन्देश है। स्वामी अपर्णानन्द ने उत्तर

दिया कि यह श्रीश्रीमाँ का मुख्य सन्देश है और वे सबसे यही कहा करती थीं।

दिल्ली में स्वामी अपर्णानन्दजी से मिलने के बाद मैं एक बार अपनी बेंगलुरु यात्रा के दौरान वहाँ उनसे मिल चुका था। एक बार बेंगलुरु में स्वामी यतीश्वरानन्द जी आश्रम-प्रांगण में ही दैनिक संध्या-भ्रमण हेतु निकले। स्वामी अपर्णानन्द और मेरे साथ ही कई अन्य लोग इसमें सम्मिलित हो गए। भ्रमण के अन्त में वे जूते उतारकर नंगे पैर हरी घास के लान पर खड़े होते थे। उन्होंने वैसा ही किया। वहाँ लगभग १०-१५ मिनट खड़े रहने के बाद जब वे जूते पहनने के लिए बढ़े, तो स्वामी अपर्णानन्द जी, जो स्वयं वरिष्ठ साधु थे, ने झुककर उनके जूते उठाकर उनके सामने रखना चाहा। किन्तु स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने अपनी छड़ी को जूतों और स्वामी अपर्णानन्द के बीच में रखकर उनकी ऐसी सहायता करने से रोक दिया। वह एक दिव्य दृश्य था ! दो महापुरुषों का एक दूसरे के प्रति प्रेम और आदर-भाव।

मैंने अन्तिम बार स्वामी अपर्णानन्द जी को वाराणसी में देखा। वे सेवानिवृत्त होकर अद्वैत आश्रम में रह रहे थे। वे हृदय रोग से पीड़ित थे और मुझे एक चिकित्सक के रूप में उनकी सेवा करने का अवसर मिला था। कभी-कभी उन्हें हार्टफेल्योर LVF के दौर पड़ते थे और उनके कमरे में ही प्राथमिक उपचार करना होता था तथा बाद में समीपस्थ अस्पताल में स्थानान्तरित करना पड़ता था। अन्तोगत्वा उन्हें पक्षाघात (लकवा) भी हो गया और उनकी वाक्शक्ति चली गई। अपने विचारों को व्यक्त करने में असमर्थ होने पर, कभी–कभी वे अपने निकटतम और प्रियजनों पर भी क्रुद्ध हो जाया करते थे। किन्तु वे कभी मेरे ऊपर क्रोधित नहीं हुए।

वस्तुत: वे एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने क्रोध को पूरी तरह से जीत लिया था। उनके अन्तरंग मित्र तथा कई वर्षों तक उनके साथ रह चुके स्वामी विश्वरूपानन्द (रामगति महाराज) ने उनके निधन के बाद एक बार मुझे बताया था कि उन्होंने कभी स्वामी अपर्णानन्द को क्रोधित होते नहीं देखा था। वे दोनों लोग एक साथ कैलास–मानसरोवर की तीर्थयात्रा कर चुके थे। यहाँ तक कि उस दुर्गम यात्रा में स्वामी अपर्णानन्द जी कभी क्रुद्ध नहीं हुए। जब कभी उन दोनों के बीच मतभेद होता था, तो वे अपनी निजी राय को वापस लेकर दूसरे के मत को स्वीकार कर लेते थे।

स्वामी बोधात्मानन्द जी (भव महाराज)

भव महाराज ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र के प्रथम प्रधानाचार्य थे। १९७१ में मैं बेलूड़ मठ की डिस्पेन्सरी में एक चिकित्सक के रूप में नियुक्त होकर वहाँ था। मैं लगेट्स हाउस में रहता था। रविवार को मैं श्रद्धेय भव महाराज (SBO) के पास जाया करता था, क्योंकि वे उस दिन फुर्सत में रहते और रविवार को डिस्पेन्सरी बन्द होने के कारण मुझे भी समय मिल जाता था।

एक बार मैं उनके कमरे में बैठा था। उन्होंने मुझे दो बिस्कुट और एक अल्युमिनियम की छोटी प्लेट में थोड़ी शहद दिया (सामान्यतया उसे अल्युमिनियम कप के ढक्कन के रूप प्रयोग किया जाता था।) उसे देते हुए न्यू टेस्टामेन्ट ऑफ द गास्पेल से सेन्ट पीटर द्वारा कथित यह कथन उद्धृत किया, ''न तो मेरे पास सोना है, न चाँदी है। जो मेरे पास है, उसे मैं तुम्हें देता हूँ।'' फिर उन्होंने सेन्ट पीटर की कथा वर्णित करते हुए यह भी कहा, ''ईसामसीह के नाम पर खड़े हो जाओ और चलो।'' उन्होंने यह एक विकलांग भिखारी से कहा था, जो खड़ा हुआ और चलने लगा।

तब मैं भी बेलूड़ मठ में डॉक्टर था और बीमार साधुओं–ब्रह्मचारियों का उपचार किया करता था। एक बार श्रद्धेय स्वामी बोधात्मानन्द जी को निमोनिया हो गया और मैं उनका उपचार कर रहा था। एक दिन जब मैं उन्हें देखने गया, तो मैंने देखा कि बेलूड़ मठ के वरिष्ठ पुजारी महाराज तथा स्वयं में एक महान संत स्वामी हितानन्द जी लेटे हुए श्रद्धेय स्वामी बोधात्मानन्द जी के बिस्तर के बगल में बड़ी विनम्रता और भक्तिभाव से घुटनों के बल झुके थे। यह एक दिव्य दृश्य था। एक संत दूसरे संत का आदर–सम्मान कर रहे थे।

स्वामी हितानन्द जी की पूजा दर्शनीय होती थी। यद्यपि बेलूड़ मठ-मन्दिर का गर्भगृह सभी ओर से खुला है, स्वामी हितानन्द जी श्रीरामकृष्ण की मूर्ति की ओर पूर्णतया तन्मय रहा करते थे और कोई यह समझ सकता था कि वे अपने आस–पास के संसार को विस्मृत कर चुके हैं।

स्वामी बोधात्मानन्द जी मास्टर महाशय के साथ अपनी भेंटों का वर्णन मुझसे करते थे। वे मास्टर महाशय के माध्यम से मठ में आए थे। उन्होंने बताया कि 'श्रीम' हमें मठ जाने तथा वहाँ साधुओं से मिलने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे। वे कहा करते ''साधु दर्शनं पुण्यम्। साधु ध्यान करते

समय सर्वोत्तम अवस्था में होते हैं।'' स्वामी बोधात्मानन्द जी ने बताया कि ऐसा सुनकर हम मठ–प्रांगण में, गंगा–तट पर या किसी मन्दिर में ध्यानरत साधुओं का दर्शन करने के लिए बड़े भोर में मठ जाया करते थे।

स्वामी बोधात्मानन्द जी मुझे स्वामी शिवानन्द जी (महापुरुष महाराज) से सम्बन्धित अपनी स्मृतियों को भी सुनाते थे। वे देवघर में थे और महापुरुष महाराज भी वहाँ थे। एक दिन प्रात:काल, जब वे उनके कमरे में गए, तो महापुरुष महाराज किसी अन्य सम्प्रदाय के एक स्वामी से बात कर रहे थे, जो उनसे मिलने आए थे और उनके परिचित थे। महापुरुष महाराज उन स्वामी को बता रहे थे, ''पिछली रात मुझे बड़ा तेज दमा (सांस फूलना) आया। मैं सो नहीं सका। यह इतना तीव्र था कि मुझे लगा कि शरीर से प्राण निकल जाएगा (अर्थात् मृत्यु हो जाएगी)। किन्तु मैंने यह भी सोचा कि मुझे कुछ भी नहीं होगा।'' ऐसा कहते हुए महापुरुष महाराज ने अपने दाहिने हाथ के अंगूठे को अर्धवृत्ताकार मुद्रा में घुमाते हुए दिखाया (ठेंगा दिखाते हुए) जो पूर्ण उपेक्षा का संकेत है। इसे बताते हुए स्वामी बोधात्मानन्द ने मुझे वह मुद्रा दिखाई।

एक बार मैं स्वामी बोधात्मानन्द जी के कमरे में उनकी मेज के सामने की कुर्सी पर बैठा था। मैंने अचानक कहा कि सब कुछ ब्रह्म है। स्वामी बोधात्मानन्द जी खुले हुए दरवाजे से बाहर देख रहे थे। उन्होंने कहा, ''हाँ, सब कुछ ब्रह्म है, किन्तु कुछ से हमें दूर रहना होगा।'' ऐसा कहते हुए उन्होंने लगभग १५ गज दूर विपरीत छोर पर बैठे हुए एक बड़े बन्दर (लंगूर) को दिखाया। अगले ही क्षण वह कूदते हुए आकर स्वामी बोधात्मानन्द जी के कमरे में स्थित मेज पर उनके ही सामने अपने मुँह से आवाजें करते हुए बैठ गया। वह कुछ खाने की आशा में था, कुछ साधुओं ने उसे खाने को कुछ दिया था। मैं उस बन्दर के पीछे था। स्वामी बोधात्मानन्द जी बंदर के सामने ही खड़े रहे। उन्होंने मुझे पीछे जाकर उनके हाथ में छड़ी थमाने को कहा। मैंने वैसा ही किया और स्वामी बोधात्मानन्द जी ने उस छड़ी से उसे भय दिखाया, तो वह चला गया। वे या मैं दोनों ही उस बंदर से भयभीत नहीं हुए।

स्वामी भूतेशानन्द जी

एक बार स्वामी भूतेशानन्द जी बिलासपुर (?) में स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति का अनावरण करने हेतु रायपुर आए। बिलासपुर से वे आश्रम के साधुओं और भक्तजनों के साथ कार से अमरकंटक गए। मैं भी उस दल में था और मैं एफरवेसेन्ट टेबलेट्स को पानी में घोलकर उस समय बनाए जानेवाले लोकप्रिय शरबत को बनाकर रास्ते में उन्हें पिलाया करता था। वे उस शरबत को पसन्द करते थे और कहीं भी विश्राम हेतु थोड़ा रुकने पर वे मुझसे एक गिलास शरबत माँगते थे। (तब वे मिशन के सहायक सचिव थे।)

अमरकण्टक में हम लोग कई पर्यटन-स्थलों पर गए, जिसमें एक कपिलधारा झरना था। वहाँ पहाड़ी मार्ग से नीचे उतरना पड़ता था। दल के अन्य लोग पहले ही नीचे चले गए थे। वे सर्वाधिक आयु के होने के कारण धीरे–धीरे चल रहे थे। मैं उनके साथ था। मैंने पूछा कि क्या उस पहाड़ी रास्ते से नीचे उतरना उन्हें कठिन लग रहा था? उन्होंने उत्तर दिया, ''नहीं, बिलकुल नहीं। मैंने पहाड़ों पर पर्याप्त चढ़ाई की है। उसकी तुलना में यह कुछ भी नहीं है। मैं दिखावा करना नहीं चाहता हूँ।'' जब मैंने पूछा कि हिमालय में वे कहाँ गए थे, तो उन्होंने कहा कि वे उत्तरकाशी गए हैं और वहाँ रहे हैं। मैंने पूछा कि क्या वे बद्री–केदार गए थे। उन्होंने कहा, ''नहीं।'' उन्होंने उत्तरकाशी में रहकर तपस्या की थी, किन्तु वे इन पवित्र तीर्थों में नहीं गए थे।

एक बार उन्होंने मुझे व्यक्तिगत रूप से विस्तार से बताया था कि उन्होंने तपस्या हेतु जाने के लिए महापुरुष महाराज की अनुमति कैसे प्राप्त की थी, कैसे उसकी तैयारी की थी, काशी कैसे गए, अद्वैत आश्रम में रहे और भिक्षा की; कैसे बाद में वे 'टीला' नामक स्थान पर जाकर रहे और वहाँ से उत्तरकाशी गए। इस प्रकार उन्होंने ईश्वर पर अधिकाधिक निर्भर रहते हुए क्रमश: अपनी तपस्या को तीव्र बनाया।

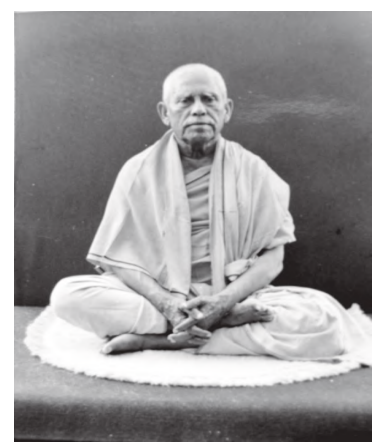

स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज

अन्तत: उन्होंने अपने मन को उन्मुक्त छोड़ दिया। तब उन्होंने ध्यान दिया कि उनका मन इष्ट–चिन्तन या तत्त्व–चिन्तन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं करता था।

उन्होंने कहा कि जहाँ वे तपस्या कर चुके थे, अब उन स्थानों को देखना कष्टकर है। वे सभी स्थान आधुनिकीकरण द्वारा लगभग नष्ट हो चुके हैं।

स्वामी भूतेशानन्द जी जब भी वाराणसी आते थे, तब वे रात्रि भोजन के बाद साधुओं के साथ बैठकर आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा करते थे और प्रश्नों का उत्तर देते थे। वे मेरे प्रश्नों को बहुत पसन्द करते थे और खुले तौर पर इसे स्वीकार करते थे। एक बार स्थानीय अद्वैत आश्रम के वरिष्ठ साधु ने उनसे हाल की जापान–यात्रा के बारे में पूछा। उन्होंने कहा, ''थोड़ी प्रतीक्षा करो। यहाँ अशोक है। वह प्रश्न पूछेगा। तब हम इस पर चर्चा करेंगे।'' प्रश्नोत्तर के बाद उन्होंने अपनी जापान यात्रा का वर्णन किया।

एक बार मैं बेलूड़ मठ तब गया था, जब श्रद्धेय भूतेशानन्द जी परमाध्यक्ष थे। सभी साधु वैरियर के बाहर

वाराणसी आश्रम

से दैनिक प्रणाम कर रहे थे। उन्होंने मुझे देख लिया और पूछा, ''तुम अशोक हो क्या?'' मैंने कहा, ''हाँ, महाराज।'' उन्होंने पूछा, ''तुम कब आए?'' मैंने बताया, ''कल''। महाराज ने कहा, ''यमराज ने नचिकेता से कहा, 'त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा' (हे नचिकेता, हमें तुम्हारे समान प्रश्नकर्ता मिले।) जब मैं वाराणसी जाता था, तो तुम ऐसे अच्छे प्रश्न पूछा करते थे। अब वे दिन फिर नहीं आएँगे।'' (आयु और खराब स्वास्थ्य के कारण उनका अन्य शहरों में जाना प्रतिबन्धित था।)

अगली बार, ऐसे ही प्रणाम के समय उन्होंने मुझे पुनः खोज लिया और कहा, ''पहले तुम ऐसे अच्छे प्रश्न पूछा करते थे, अब तुम नहीं पूछते हो।'' मैंने उत्तर दिया, ''उन प्रश्नों के लिए यहाँ उपयुक्त वातावरण नहीं है।'' (श्रद्धेय महाराज सहज भाव में रहकर हास–परिहास किया करते थे। उस समय गम्भीर भाव नहीं था।) वे तत्काल मुझसे सहमत होकर बोले, ''यह सत्य है।''

एक बार उनके कुछ घनिष्ठ भक्त कोलकाता से कार से उनके पास आए थे। एक दिन इनमें से कुछ पुरुष-भक्तों ने पूर्वोक्त रात्रिकालीन-कक्षा में भाग लिया। उन्हें देखते ही स्वामी भूतेशानन्द जी नाराज हो गए और पूछा, ''वे लोग वहाँ क्यों हैं?'' अभिप्राय यह था कि यह साधुओं की गोष्ठी थी, तो गृहस्थों को वहाँ क्यों रहना चाहिए? इसके बाद भक्तगण वहाँ से चले गए।

तब स्वामी भूतेशानन्द जी ने श्रीमद्भागवतम् से उद्धरण देते हुए कहा कि आध्यात्मिक साधक को केवल स्त्रियों का ही नहीं, अपितु स्त्रियों का संग करनेवाले अर्थात् गृहस्थों की संगति से भी दूर रहना चाहिए।

एक बार मैं तत्कालीन सह-महासचिव स्वामी भूतेशानन्द जी के बेलूड़ मठ स्थित कार्यालय में था। तभी पुस्तकालय के प्रभारी स्वामी दैनिक समाचार पत्र को पुस्तकालय हेतु लेने के लिए वहाँ आए। स्वामी भूतेशानन्द जी ने परिहासपूर्वक कहा, ''अरे मैं तो इसे पढ़ नहीं सका। हाँ, श्रीरामकृष्ण तो समाचार पत्र को छू भी नहीं सकते थे। हमलोग इसे स्पर्श किए बिना नहीं रह सकते। कम से कम मुझे इसे छू लेने दो।'' ऐसा कहकर स्वामी भूतेशानन्द जी ने समाचार पत्र को स्पर्श करके उन स्वामी को दे दिया।

एक बार हिमालय में अपनी आध्यात्मिक साधनाओं के बारे में बताते हुए (मुझे प्रसंग का स्मरण नहीं है) उन्होंने कहा कि एक बार वे अति स्वल्प सामानों के साथ तथा पूर्णतः अनासक्त होकर पहाड़ों से अकेले ही उतर रहे थे। एक वृक्ष के नीचे बैठते ही उन्हें पूर्ण अनुभूति, मुक्ति की अनुभूति हुई। तब मैंने पूछा, ''क्या वह सर्वोच्च तथा सर्वाधिक वांछित अवस्था थी?'' उन्होंने उत्तर दिया, ''नहीं, भक्ति सर्वोच्च है।''

एक बार मैंने उनसे पूछा कि श्रीरामकृष्ण ने हमें परामर्श दिया है कि एक हाथ से कार्य करें और दूसरे हाथ से भगवान को पकड़े रहें और कार्य समाप्त हो जाने पर दोनों हाथों से भगवान को पकड़ लेना चाहिए, किन्तु स्वामीजी कहते हैं कि तुम जो कुछ भी करो, उसमें अपना पूरा मन लगा दो। तो फिर हमें क्या करना चाहिए? श्रद्धेय महाराज ने हँसते

हुए कहा, ''काको वन्दो, काको निन्दो, दोनों पलड़ा भारी।'' अर्थात् दोनों ही मत सत्य हैं।

प्रश्न : विवेक-चूड़ामणि जैसे वेदान्त–ग्रंथों में त्वं पद शोधन का ही सर्वाधिक विस्तार से वर्णन है, तत् पद शोधन का नहीं। ऐसा क्यों?

उत्तर : क्योंकि वही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और कठिन है। तत् पद शोधन पहले ही वहाँ है।

प्रश्न : आप अपनी पीढ़ी के साधुओं की तुलना वर्तमान पीढ़ी के साधुओं से कैसे करते हैं?

उत्तर : तुलना का कोई प्रश्न नहीं हो सकता है।

उन्होंने मुझे उपदेशसाहस्री पढ़ने को कहा जिसे बाद में मैंने पढ़ा।

एक बार मैंने उन्हें बताया कि मैं कुछ महीनों तक भिक्षाटन करके तपस्या करने जाता हूँ। उत्तर में श्रद्धेय महाराज ने कहा कि भिक्षा पर निर्भर रहना उनका अभ्यास (स्वभाव) हो गया था।

एक बार मैंने उनसे पूछा, ''टी.सी. (प्रशिक्षण केन्द्र) में हमें भगवद्गीता और उपनिषदों पर शंकराचार्य का भाष्य पढ़ाया जाता है। चूँकि हम अपनी परम्परा में सभी आचार्यों और उनके दर्शनों (दार्शनिक मतों) की प्रासंगिकता को स्वीकार करते हैं, तो अन्य आचार्यों के भाष्य हमें क्यों नहीं पढ़ाए जाते हैं?

उत्तर : शंकराचार्य का भाष्य एक बार पढ़ने के बाद तुम्हें पता चलेगा कि अन्य भाष्यों में उतनी गहराई नहीं है।

एक बार मैंने स्वामी भूतेशानन्द जी को बताया कि हमें रोगी में ईश्वर देखने को कहा जाता है, किन्तु अस्पताल में इतने सारे रोगियों की सेवा करने के बावजूद मैं उनमें ईश्वर को देख पाने में समर्थ नहीं हूँ। उत्तर में श्रद्धेय भूतेशानन्द जी ने कठोर स्वर में कहा, ''क्या तुम मूर्ति में ईश्वर को देखते हो?'' अर्थात् यदि मैं मूर्ति में सचमुच ईश्वर को देखता, तो मेरा जीवन बदल जाता और मैं सन्त बन जाता।

स्वामी विश्वरूपानन्द (रामगति महाराज)

वे एक प्रकाण्ड विद्वान थे और ब्रह्मसूत्र पर शंकराचार्य के भाष्य का बंगला में अनुवाद करके उस पर अपने विचार भी लिखे हैं। किन्तु संघ की प्रारम्भिक परम्परा के अनुसार रोगी नारायण की सेवा करने के लिए उनकी भी नियुक्ति वाराणसी सेवाश्रम हुई थी। उन्होंने यह घटना व्यक्तिगत रूप से बताई थी।

रोगियों के घावों की मरहम-पट्टी करना उनका कार्य था। सम्भवत: गैंगरीन के एक रोगी के घाव से निकली दुर्गन्ध इतनी तीक्ष्ण थी कि उसके पास जाना भी कठिन था। उस समय स्वामी सारदानन्द जी वाराणसी आए हुए थे और रामगति महाराज ने यह समस्या उनके सामने रखी। स्वामी सारदानन्द जी ने गम्भीर भाव से सुनकर कहा, ''तुम क्या कर सकते हो? ठाकुर से प्रार्थना करो। मैं भी प्रार्थना करूँगा।''

अगले प्रात:काल चमत्कार हो गया। जब रामगति महाराज उस रोगी के पास गए, तो उन्हें वह तीक्ष्ण दुर्गन्ध बिलकुल ही पता नहीं चली और वे आसानी से मरहम–पट्टी करने में समर्थ हो गए। उसके बाद अन्य रोगियों की सेवा में भी उन्हें तीक्ष्ण दुर्गन्ध के कारण कभी कोई परेशानी नहीं हुई।

रामगति महाराज सहसा चल बसे। उनका मृत शरीर उनके बिस्तर पर जीवित-सदृश मिला। ऐसा प्रतीत होता था कि जप करते हुए उनका देहान्त हुआ।

मानिक महाराज

मुझे उनका संन्यास नाम याद नहीं है। उनके सीने के एक तरफ प्लूरा था। यह एक प्रकार का असाध्य रोग है, एक ऐसा स्थायी रोग जिससे उनके आधे फेफड़े की श्वसन-क्षमता नष्ट हो चुकी थी।

एक बार उन्हें देखने के लिए आपात्कालीन सेवा (इमरजेन्सी) में बुलाया गया। उन्हें न्यूमोनिया हो गया था तथा साँसों के कष्ट से लगभग बेहोश थे। उन्हें तुरन्त अस्पताल में भर्ती करके आपात्कालीन उपचार होने लगा। मैं अपने कमरे में था, तभी यह संदेश भेजकर मुझे बुलाया गया कि वे चिल्लाकर मुझे बुलाने को कह रहे थे। जब मैं उनके पास गया, तो मैंने पाया कि वे होश में और खतरे से बाहर थे। किन्तु मेरे वहाँ पहुँचते ही वे मुझे यह कहते हुए फटकारने लगे कि मैंने उन्हें क्यों बचा लिया? मैंने उन्हें मरने क्यों नहीं दिया? वे मिशन के सीनियर सिटीजन होम में सेवानिवृत्त होकर रहते हुए मृत्यु और काशी–प्राप्ति की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं इसके सिवाय क्या कह सकता था कि एक डॉक्टर के रूप में उनका जीवन बचाना ही मेरा प्राथमिक कर्तव्य था। अगले दिन शान्त मनोभाव होने पर उन्होंने मेरा आलिंगन किया, क्योंकि वे मुझे बहुत प्रेम करते थे और इस प्रकार उसी बात को दुहराते रहे। **(क्रमश:)**

श्रीरामकृष्ण-गीता (८)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

ईश्वरीयप्रसङ्गेषु प्राह मथुर एकदा।
एतं मे संशयं तात दूरीकर्तुमिहार्हसि।।११।।

अनुवाद : एक दिन ईश्वरीय कथा-प्रसंग में मथुर बाबू ने श्रीरामकृष्ण देव से पूछा – ''बाबा ! इस विषय में मेरा संशय दूर कर दीजिये।।११।।

सन्नपि भगवान् स्रष्टा नियमाननुवर्तते।
अयमेव न शक्नोति कर्तुं सर्वं यथेप्सितम्।।१२।।

अनुवाद : भगवान (जगत के) सृष्टिकर्ता होकर भी नियम को मानकर चलते हैं, वे (ईश्वर) इच्छा करने पर भी सब कुछ करने में सक्षम नहीं हैं।

कथं नु तद् भवेदित्थमित्थमिच्छामयः स ईश्वरः।
चेदिच्छति स तर्ह्येव सर्वं तत् कर्तुमर्हति।।१३।।

अनुवाद : श्रीरामकृष्ण कहते हैं – ऐसा क्यों होगा रे? वे ईश्वर हैं, इच्छामय हैं, वे यदि चाहें, तो सबकुछ कर सकते हैं।।१३।।

श्रीमथुर उवाच

शक्नोति चेत् स वै तर्हि कर्तुं तथा यथेप्सति।
अस्मिन् रक्तजवावृक्षे शुक्लां किं कर्तुमर्हति।।१४।।

अनुवाद : श्री मथुर बोले – वे यदि जैसी इच्छा हो, वैसा ही करने में सक्षम हैं, तो इस लाल जवा (गुड़हल) फूल के वृक्ष में क्या सफेद जवा खिला सकते हैं?।।१४।।

श्रीरामकृष्ण उवाच

अवश्यमेव शक्नोति तेन संकल्प्यते यदि।
अस्मिन् रक्तजबा वृक्षे श्वेतपुष्पञ्च सम्भवेत्।।१५।।

अनुवाद : श्रीरामकृष्ण कहते हैं – अवश्य ही कर सकते हैं ! यदि उनकी इच्छा हो, तो इस लाल जवा (गुड़हल) फूल के वृक्ष में सफेद फूल भी खिला सकते हैं।।१५।। **(क्रमशः)**

कविता

माँ सरस्वति चिर कृपामयि

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

माँ सरस्वति चिर कृपामयि, आत्मज्ञान-प्रकाश दे दो ।
घोर तम को दूर करके, दिव्य शक्ति-विकास दे दो ।।
कंठ में माँ मधुर स्वर दो, संगीत प्रति राग दे दो ।
गान तेरा नित्य गाऊँ, विषयभोग-विराग दे दो ।।
क्लेश मेरा दूर कर दो, दुष्टबुद्धि-विनाश दे दो ।
ज्ञान के विस्तार का माँ, तुम मुझे उल्लास दे दो ।।
वीणापाणि सारदे माँ, विमलमति-उपहार दे दो ।
हंसवाहिनि विभवदायिनि, मुक्ति का आधार दे दो ।।

जय सरस्वती माँ बुद्धिदायिनी

आनन्द तिवारी पौराणिक, महासमुँद

अज्ञान-तिमिर, विलाप विनाशिनी ।
जय सरस्वती माँ बुद्धिदायिनी ।।
वीणा, पुस्तक, हस्त शोभिता,
धवल वस्त्र से सदा आवृता,
हंसारूढ़ा शुभानने जय, छबि अलौकिक मंगलमय,
प्रज्ञा-ज्योति प्रकाशिनी । जय सरस्वती माँ बुद्धिदायिनी।।
शिव, विष्णु, ऋषि करें प्रार्थना,
सकल ब्रह्माण्ड की शुभकामना,
तव सन्तति जग जीवन माता, नाम-स्मरण सब सुख दाता,
कृपामयी कण-कण निवासिनी। जय सरस्वती माँ बुद्धिदायिनी।

आध्यात्मिक जिज्ञासा (७४)

स्वामी भूतेशानन्द

५०

प्रश्न – महाराज ! हमलोगों का एक प्रश्न है।

महाराज – हाँ, कहो।

प्रश्न – इस वर्ष राहत-कार्य (रिलीफ) की शताब्दी है। १५ मई, १९९७ ई. में सारगाछी के पास महुला में पहला राहत-कार्य हुआ था। उसके बाद एक सौ वर्ष बीत गया। अच्छा महाराज, इसके बाद ही तो कोलकाता प्लेग रिलीफ – राहत कार्य हुआ था। वर्तमान में लाटुर में हुआ था।

महाराज – फेमिन रिलीफ, कलरा रिलीफ भी हुआ है। इसके अतिरिक्त बाढ़-राहत-कार्य तो चल ही रहा है।

– महाराज एक अन्य राहत-कार्य भी हुआ है – मुंगेर-राहत कार्य। अखण्डानन्दजी ने वहाँ आपको जाने को कहा था?

महाराज – हाँ। किन्तु वह मुंगेर-राहत-कार्य नहीं था, बिहार का भूकम्प राहत-कार्य था। मुंगेर के सिवाय भी कई स्थानों पर राहत-कार्य हुआ था।

– कलरा-राहत-कार्य किसने किया था महाराज?

महाराज – वह तो गंगाधर महाराज ने किया था।

– पंजाब में क्या राहत-कार्य हुआ था?

महाराज – वहाँ प्लेग-राहत-कार्य हुआ था।

– कब?

महाराज – कब हुआ था मुझसे पूछ रहे हो? मैं सबेरे क्या खाता हूँ, शाम को ही याद नहीं रहती।

– महाराज, शरणार्थी राहत कार्य भी तो हुआ था।

महाराज – हाँ, शरणार्थी–राहत-कार्य भी हुआ था। दो स्थानों पर – दिल्ली और पश्चिम बंगाल के पूर्व-पाकिस्तान की सीमा पर, पूर्व पाकिस्तान से जब शरणार्थी आये थे, तब। उसके बाद बंगलादेश की स्वतन्त्रता युद्ध के समय १९७१ में जब बंगलादेश बना, तब एक राहत-कार्य हुआ। बांगलादेश से बंगाली सब आये। तब चेकपोस्ट नहीं था। जिसको जिधर से आने में सुविधा हुई आया। पैदल चलते-चलते लोग आये हैं। सिर पर एक पोटली है। जो भी सम्पत्ति है, सब उसी में रखी थी। देखता था – उनके बगल में एक चटाई और पैदल आ रहे हैं। कुछ देर बाद देखकर तो मेरी आत्मा का शरीर छोड़कर जाने की स्थिती हो गयी थी। सोचा बाबा ! इतने लोग जायेंगे कहाँ?

– महाराज ! पंजाब में जो राहत कार्य हुआ था, सुना हूँ कि शायद, जवाहरलाल नेहरू ने भी राहत-कार्य किया था?

महाराज – जवाहरलाल नेहरू ने राहत-कार्य किया है, यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन राजेन्द्र प्रसाद ने किया था।

– क्या यह देश-विभाजन के समय १९४७ के बाद हुआ था?

महाराज – १९३५ में बिहार के भूकम्प के समय राजेन्द्र प्रसाद ने स्वयं राहत-कार्य किया था। उन्होंने एक सभा में कहा था – मैं अपने को धन्य मानता हूँ। क्योंकि छात्रावस्था में मैंने रामकृष्ण मिशन के साथ राहत-कार्य करने का सुअवसर प्राप्त किया था।

– जब उन्होंने यह बात कही थी, तब क्या वे भारत के राष्ट्रपति थे?

महाराज – हाँ, यह बात उन्होंने राजकोट में कही थी।

– मुख्य कार्यालय, बेलूड़ मठ में तो आप बहुत दिनों तक राहत-कार्य विभाग के प्रभारी थे। आपके कार्यकाल में क्या-क्या राहत-कार्य हुआ था?

महाराज – सब क्या याद है। सूरत में हुआ था। मैं गया था। मुम्बई के सम्बुद्धानन्द स्वामी ने उसका संचालन किया था। कच्छ के भूकम्प राहत-कार्य की देखभाल मैंने की थी। मैंने किया था, कहने से ही 'मैं' इतना बड़ा हो गया। (महाराज ने दोनों हाथों को फैलाकर दिखाया)

– मेदिनापुर में क्या राहत-कार्य हुआ था?

महाराज – मेदिनीपुर जिला में एक बाँध में बहुत बड़ा छेद हो गया था। एक बाँध टूटकर गिर गया था। हमलोगों की नाव में एक हजार मन चावल जा रहा था। नाव भरी हुई थी। छेद से बीच में जल घुस रहा है, जहाँ टूट गया था, वहीं से नाव को पार करना होगा। किन्तु माल से भरी नाव को पार करना इतना सरल है क्या! नाव को खाली करना होगा। कैसे भी नाव से चावल उतारकर छेद के उस पार जाकर पुन: नाव में चावल को भरना होगा। सहायता करने के लिए कोई था नहीं। बाहर के ननी महाराज, भूतेशानन्द, विकास महाराज और अन्य कुछ लोग थे। चावल की बोरी पीठ पर लेकर उस पार जाकर नाव में भरना। टूटे बाँध में से ही नाव को पार कराना होगा। यह १९२६ की बात है।

– महाराज बर्मा में बड़ा राहत-कार्य हुआ था क्या?

महाराज – बर्मा में नहीं, डीमापुर में। बर्मा से शरणार्थी आये हुए थे।

– उस समय राहत कार्य में क्या-क्या सामग्री दी जाती थी?

महाराज – चावल, दाल, वस्त्र। किसी-किसी राहत कार्य में कम्बल भी। परन्तु सभी जगह कम्बल देना सम्भव नहीं होता था। उस समय हमलोगों में सर्वत्र कम्बल देने की क्षमता भी नहीं थी। कहीं-कहीं बर्तन भी दिया गया था।

– महाराज, रामकृष्ण मिशन के द्वारा आज तक भारत के बाहर कहीं राहत कार्य हुआ है?

महाराज – वैसा कुछ स्मरण नहीं हो रहा है।

– क्यों महाराज, अभी तो हमलोगों ने मास्को (रूस) में राहत कार्य किया है, गोर्वाच्योव के शासनकाल में। दूध, शिशु आहार भेजा गया था।

महाराज – वह तो तुमलोगों ने अपने हाथों से नहीं किया है। सामान भेज दिया है।

– महाराज ! नेपाल, बांगलादेश, श्रीलंका, इन सब स्थानों पर राहत-कार्य नहीं हुआ क्या?

महाराज – नेपाल में हुआ कि नहीं, वह तो नहीं जानता, किन्तु बांगलादेश में हुआ है।

– महाराज ! नेपाल में जब भूकम्प हुआ था, तब लखनऊ से राहत-कार्य किया गया था, ऐसा सुना हूँ।

महाराज – ओ, ऐसा है क्या? लेकिन श्रीलंका में कई बार राहत-कार्य हुआ है। ये सब देश तब भारत में ही थे।

– डिमापुर में राहत-कार्य देश-विभाजन के पहले हुआ था क्या?

महाराज – हाँ ! शरणार्थी सब बर्मा से आ रहे थे। दूसरा विश्वयुद्ध हो रहा है। मणिपुर में बम गिरा। कलकत्ता में भी बम गिरा।

– शिलांग से आपको राहत-कार्य करना पड़ा?

महाराज – उस समय वहाँ बाहरी लोगों को नहीं जाने देते थे। संवेदनशील क्षेत्र था न। वहाँ एक युद्ध की घाटी है। डिमापुर अर्थात् प्रान्तीय क्षेत्र। वहाँ रेलवे का प्रधान कार्यालय है। उसके बाद ट्रक से जाना होता था। वहाँ किसी भारतीय को नहीं जाने देते थे। रबार्ट रिड लाट साहब थे। मैं तब शिलांग में था। उनकी पत्नी ने मुझे फोन किया – ''महाराज ! क्या आप एक बार आ सकते हैं?'' मैं गया। एक सरकारी चिकित्सक मुझे अपने साथ ले गये। हमलोग तो उनका बहुत सम्मान करते हैं, किन्तु वे घर में प्रवेश नहीं कर सके, बाहर ही खड़े रहे, मैं भीतर गया। श्रीमती रिड ने कहा – ''महाराज, यह तो बड़ा संवेदनशील क्षेत्र है, इसलिए मैं बाहरी किसी व्यक्ति को कह नहीं सकती। यदि आप राहत-कार्य का दायित्व स्वीकार करें, तो मैं सहमत हूँ।'' मैं तो इसी सुअवसर की खोज में था। मैंने कहा – हाँ, करूँगा। उसके बाद बेलूड़ मठ में सेवकों को भेजने के लिए बताया। माधवानन्द स्वामी से जिसे-जिसे माँगा था, उन्होंने उन लोगों को भेजा। हेम महाराज को भी उन्होंने भेजा। तत्पश्चात् मैंने श्रीमती रिड को कहा – ''यदि मैं शिलांग में रहूँ, तो सम्पर्क करने में सुविधा होगी। उन्होंने कहा – ''सर्वनाश ! आपको उस क्षेत्र में ही रहना होगा। हमलोग अन्य किसी पर विश्वास नहीं करते।''

– क्या आप डिमापुर में थे?

महाराज – हाँ। शिविर एक विद्यालय के भवन में था, जिसे उनलोगों ने हमलोगों को दिया था। वह बड़ा विचित्र राहत-कार्य था। शरणार्थी आ रहे हैं, उनको भोजन कराना, शिविर से कहाँ जायेंगे, उनके लिए रेलवे टिकट करके देना, यह सब कार्य था।

– क्या खर्चा सब सरकार ने दिया था?

महाराज – सरकार के ही देने की बात थी। वह दी थी। हमलोग अतिरिक्त थोड़ा कुछ दिये थे।

– उस समय आपने चन्दा लिया था क्या?

महाराज – नहीं, बेलूड़ मठ ने दिया। हमलोग उस समय कहाँ से चन्दा लेंगे? वस्त्र, दूध यही सब दिया गया था। कन्डेन्स मिल्क एक-एक डब्बा दिया गया था और भी कुछ फुटकर सामान दिया गया था।

– जो शरणार्थी थे, क्या वे सभी भारतीय थे?

महाराज – अधिकांश वही थे। कुछ-कुछ बर्मी भी थे।

– भारतीयों में बंगाली अधिक थे या अन्य राज्यों के लोग भी थे?

महाराज – नहीं, केवल बंगाली नहीं थे, अन्य राज्यों के लोग भी थे, पंजाबी बहुत थे, अधिकांश वे लोग थे, जो बर्मा में बस गये थे।

स्वामी पुण्यानन्द जी उस समय अपना आश्रम बन्द कर पैदल चलकर आये थे। लेकिन वे राहत-कार्य में नहीं थे। उन शरणार्थियों के साथ ही आये थे।

– अच्छा आपलोगों के किट-बैग (पैकेट) में क्या-क्या था।

महाराज – प्रत्येक राहत-कर्मी को एक-एक किट-बैग दिया गया था। बैग अर्थात् कपड़े का बैग। उसमें चिउड़ा, एक कन्डेस्ड मिल्क, मोमबत्ती, दियासलाई और लाठी था। उन लोगों से कह दिया था – तुम लोग मार्ग से मत जाना। मार्ग का ध्यान रखते हुए जंगल के भीतर से जाना। क्योंकि उधर बम गिर रहा है। हमलोग गोलघाट में मिलेंगे। गोलघाट डिमापुर से पचास मील दूर है। इस प्रकार उनलोगों को भेज दिया। मैं रूक गया, मैंने कहा था – कोई ब्रह्मचारी नहीं रहेगा। संन्यासी चाहें, तो रह सकते हैं, नहीं तो नहीं भी रह सकते हैं। उनकी इच्छा।

– अन्त तक कितने लोग थे, महाराज?

महाराज – पाँच-छह लोग।

– कितने दिन राहत-कार्य चला था?

महाराज – वह याद नहीं है। किन्तु दो-तीन महीने से अधिक होगा।

– आपने जब कहा कि जा भी सकते हैं, तो कितने लोग चले गये थे महाराज?

महाराज – कोई नहीं गया। थोड़ी लज्जा भी तो है !

– आन्तरिकता भी थी। आपके साथ कार्य करने का एक आनन्द भी है। किन्तु आपने एक दिन कहा था – अब और सहन नहीं हो रहा है। उस समय चारों ओर दुर्गन्ध थी !

महाराज – हाँ ! जब वर्षा हुई, तो घुटने भर कीचड़ हो गया और उसमें मानव का मल था।

– मच्छर भी बहुत थे।

– मच्छर-ओछर की बात उस समय सोचने का समय नहीं था। इतनी दुर्गन्ध थी कि कहीं रहा न जाय। जो लोग उधर से जाते थे, दूर से नाक बन्द करके हमलोगों को कहते थे – आप लोग यहाँ हैं कैसे? मैं कहता – तुमलोग आओ। तुमलोग भी रह सकोगे। वास्तव में हमलोगों को अभ्यास हो गया था। लेकिन भोजन करते समय चारों ओर फेनाइल छींटने के बाद खाते थे। फेनाइल की दुर्गन्ध से भी खाया नहीं जाता था। इसी प्रकार खाते थे। जीवन में इतना कष्ट बाद में कभी नहीं सहा।

– क्या पीने का पानी शुद्ध मिलता था?

महाराज – पीने का पानी तालाब से लाते थे। इसके सिवाय चारों ओर कलरा हो रहा है। कलरा के रोगी आ रहे हैं। एक दिन देखा – एक कलरा का रोगी रास्ते के किनारे सोया हुआ है। वह मुमुर्षु है। उसके शरीर पर सफेद मच्छरदानी थी, बहुत सम्पन्न लग रहा था। कोई अधिकारी होगा। उसे शिविर में लाया गया। तब भी पीने-को 'पानी पानी' माँग रहा है। एक शरणार्थी को कहा – उसे पानी दो। उसने कहा – उसके पास जाऊँगा ही नहीं। मैंने कहा – ठीक है, तुमको यहाँ से निकाल दूँगा। तब अब क्या करेगा, पानी दिया। उसी रोगी को मुख्य शिविर में लाया गया। उस समय बहुत से लोगों की मृत्यु हुई थी।

– वह रोगी बचा था?

महाराज – हाँ, वह बचा था। सरकार ने चिकित्सक भेजा था। हमलोग औषधि देते थे। **(क्रमशः)**

पुस्तकें प्राप्त हुईं

१. स्वामी विज्ञानानन्द प्रत्यक्षदर्शियों के अनुभव
संकलनकर्ता – सुरेशचन्द्र दास और ज्योतिर्मय बसुराय
प्रकाशक – रामकृष्ण मठ, रामकृष्ण आश्रम मार्ग, धन्तोली, नागपुर – ४४००१२, पृष्ठ-२१४, मूल्य- ७५/-

स्वामी संवित सुबोधगिरि द्वारा रचित पुस्तकें –
२. गीता में राजयोग, पृष्ठ-९६, मूल्य-१२०/-
३. गीता में अवतार तत्त्व, पृष्ठ-४८, मूल्य-६०/-
४. सर्वकालेषु माममनुस्मर युद्ध्य च, पृष्ठ-४८, मूल्य-६०/-
प्रकाशक – स्वामी संवित सुबोधगिरि, श्रीनृसिंह भवन, संन्यास आश्रम, भक्तानन्द शिव मन्दिर, भीनासर-३३४४०३, बीकानेर (राजस्थान) मोबा. ०९४१३७६९१३९

जंगल से पद्मश्री तक

स्वामी पद्माक्षानन्द

तुलसी नाम सुनते ही हमारे मन में तुलसीदास का स्मरण हो आता है। इसके साथ ही प्रत्येक हिन्दुओं के घर को पवित्र करती तुलसी का पेड़ का भी स्मरण होता है। इसी प्रकार वर्तमान समय में तुलसी गौड़ा का नाम हम सबको याद हैं। तुलसी गौड़ा का नाम सीधे प्रकृति से जुड़ा हुआ है।

तुलसी का जन्म १९४४ ई. को उत्तर कर्नाटक के अन्कोला तालुक के होनाल्ली गाँव के एक गरीब परिवार में हुआ। वे हलक्की स्वदेशी जनजाति की हैं। वे जब २ वर्ष की थीं, तो उनके पिता का निधन हो गया। उनकी माँ और बहन निकट के नर्सरी में दैनिक मजदूर के रूप में कार्य करती थीं। जब तुलसी कुछ बड़ी हो गयीं, तो अपनी माँ और बहनों के साथ उन्होंने भी नर्सरी में काम करना आरम्भ दिया। घर की आर्थिक परिस्थिति के कारण तुलसी कभी विद्यालय नहीं जा पायीं और उनकी लिखाई-पढ़ाई कभी भी नहीं हुई। इसीलिए वे न तो लिख सकती हैं और न पढ़ सकती हैं। लगभग ११ वर्ष में तुलसी का विवाह गोविंद गौड़ा से हो गया।

नर्सरी में तुलसी Karnataka Forestry Department के लिए बीज के देखभाल का कार्य करती थी। बोटनी के संरक्षण और व्यापक ज्ञान के लिए उनको स्थायी पद दिया गया। ६० वर्षों तक उन्होंने दैनिक मजदूर और स्थायी मजदूर के रूप में Karnataka Forest Department में कार्य किया। ७० वर्ष की उम्र में वे उस पद से सेवानिवृत्त हुईं।

पेड़-पौधों की देखभाल के लिए तुलसी को इन्दिरा प्रियदर्शिनी वृक्ष मित्र अवार्ड वर्ष १९८६ में दिया गया।

१९९९ ई. में कर्नाटक राज्योत्सव पुरस्कार या जिसे कन्नड़ राज्योत्सव पुरस्कार के नाम से भी जाना जाता है, तुलसी को दिया गया। यह कर्नाटक सरकार का द्वितीय सर्वोच्च नागरिक सम्मान है।

इसके साथ ही तुलसी को कविता मेमोरियल अवार्ड भी मिल चुका है।

तुलसी को २०२० का पद्मश्री अवार्ड मिला। लेकिन कोरोना के कारण ८ नवम्बर, २०२१ को उनको यह सम्मान दिया गया। पद्मश्री अवार्ड भारत का चौथा सर्वोच्च नागरिक सम्मान है। पुरस्कार प्राप्त करने जब वे आयीं, तो उनके सहज, सरल, आधुनिक समय में भी अनाडम्बरहीन जीवन, पहनावा ने सभी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। नंगे पाँव और पारम्परिक धोती पहनकर वे माननीय राष्ट्रपति महोदय से पुरस्कार लेने आयी थीं।

तुलसी ने अपने जीवन काल में लगभग १ लाख से भी अधिक पेड़ लगाएँ हैं।

तुलसी को पेड़ों के बारे में बहुत अच्छी जानकारी भी है। इसी कारण तुलसी गौड़ा को ''जंगल की इनसाइक्लोपीडिया'' (Encyclopedia of Forest) कहा जाता है। तुलसी ने अपने नाम के ही अनुरूप अपना पूरा जीवन पर्यावरण को समर्पित कर दिया है।

माननीय राष्ट्रपति से पद्मश्री पुरस्कार लेती हुई तुलसी गौड़ा

कोरोना काल में हमने देखा कि अनेक लोग ऑक्सिजन की कमी के कारण मर गये। दिल्ली में प्रदूषण के कारण जनता का जीना दूभर हो रहा है। ईश्वर हमें यह ऑक्सिजन पेड़-पौधों के माध्यम से मुफ्त में देते है। तो बच्चों आओ ! हम सब मिलकर तुलसी गौड़ा से प्रेरणा लेकर अपने जीवन और अपने आने वाले भविष्य में ऑक्सिजन प्राप्त करने और प्रकृति को सौन्दर्यशाली बनाने के लिए पेड़ लगाएँ। ○○○

सन्त रविदास जयन्ती विशेष

जग में बैरी कोई नहीं

डॉ. रामनिवास

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, सामाजिक एवं मानविकी शिक्षा विभाग,
क्षेत्रिय शिक्षा शोध संस्थान (एन.सी.ई.आर.टी) पुष्कर मार्ग, अजमेर (राजस्थान)

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल का विशेष महत्त्व है। इस काल में भूली-भटकी जनता आध्यात्मिक सन्तों, महापुरुषों की शरण में आकर उन सभी धार्मिक रूढ़ियों, रीतियों, अन्धविश्वासों और छुआछूत से मुक्ति का मार्ग प्राप्त करती हुई देखी जा सकती है, जो मानव विरोधी हैं। कृत्रिम मानव निर्मित जितने भी लोकाचार स्वार्थवश धर्म के नाम पर प्रचारित किए गए, वे सब समाज का शोषण करने के लिए रचे गए। धर्म के नाम पर व्याप्त अन्धविश्वास से जब मनुष्य-समाज अपनी विवेक शक्ति खो बैठा। तब काशी में दो महान सन्त अवतरित हुए – एक सन्त कबीर और दूसरे सन्त रविदास। ये दोनों ही कथित छोटी जाति में उत्पन्न हुए और मानवता को धर्म का वास्तविक पथ दिखाया।

सन्त रविदास का जन्म १४१४ ई. में माघ पूर्णिमा के दिन रविवार को काशी वर्तमान वाराणसी नगर के पास गाँव सीर गोवर्धनपुर में 'चमार' नामक जाति में हुआ। इनके पिताजी का नाम 'रग्घू' एवं माताजी का नाम 'करमा' था। इनकी पत्नी का नाम 'लोना'' था। मध्यकाल में वर्ण व्यवस्था का बोलबाला था। शिक्षा-दीक्षा विशेषकर ब्राह्मणों तक ही सीमित थी। कुछ द्वार क्षत्रिय और वैश्यों के लिये खुले थे। अन्त्यजों को पढ़ने का अधिकार नहीं था। पहले से ही निर्धारित कर लिया जाता था कि समाज के किस वर्ग को शिक्षा देनी है और किसे नहीं देनी है। इसलिए सामाजिक-राजनीतिक बाध्यता के कारण रविदासजी को भी विधिवत आश्रम गुरुकुल अथवा विद्यालय की शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकी। उन्होंने अपने मन को परमात्मा की पाठशाला में पढ़ाने की बात कही है –

चल मन हरि चटसाल पढ़ाऊँ।
गुरु की साँटि ज्ञान का अच्छर,
बिसरे तो सहज समाधि लगाऊँ।।
प्रेम की पाटी सुरति की लेखनी,
ररा-ममा लिखि अंक दिखाऊँ।

तत्कालीन समाज राज-व्यवस्था में अन्त्यजों के साथ छुआछूत और भेदभाव का व्यवहार सामान्य स्वीकृत परम्परा थी। जातियों के व्यवसाय निर्धारित थे, उससे बाहर निकलने पर दण्डित किया जाता था। अध्ययन-अध्यापन, प्रभु-भक्ति करना और धर्म-प्रचार की मनाही थी। जिसका दुष्परिणाम यह देखने में आया कि हिन्दू धर्म द्वारा समाज के ही एक वर्ग का जीवन धर्म-विहीन तथा कुत्ते-बिल्ली से भी बदतर बना दिया गया था। यह विश्व समाज के इतिहास में सम्भवत: पहली घटना थी कि एक ही धर्म के अनुयायी आपस में ऐसा व्यवहार करें कि उसी धर्म को मानने वाले दूसरे वर्ग द्वारा तिरष्कृत होकर अधोगति को प्राप्त हों। भारत जैसे धर्म-प्राण देश में यह भी सम्भव हुआ।

ऐसे विकट समय और मानव विरोधी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक परिस्थितियों में रविदासजी ने अपनी जाति और कुटुम्ब का उल्लेख निस्संकोच और स्वाभिमान के साथ अपने पदों में बार-बार किया है –

''नागर जनां मेरी जाति बिखआत चमारं।''
''कह रैदास खलास चमारा।''

''मेरी जाति कुटबांढला ढोर ढोवंता नितहि बनारसि आसपासा''

रविदासजी अपना पैतृक व्यवसाय जूता बनाने का कार्य ही करते रहे। उन्होंने कबीर के समान अपने व्यावसायिक औजारों को साँग रूपक में साधनात्मक प्रतीक भी बनाया है –

चमरटा गाँठ न जानई, लोग गठावै पनहीं।
आर नहीं जिह तोपउ, नहीं रांबी ठाउ रोपउ।।
लोग गंठि गंठि खरा बिगूचा, हउ बिन गाँठे जाइ पहूचा।
रविदास जपे राम नामा, मोहि जम सिउ नाहीं कामा।।

पैतृक व्यवसाय में अधिक रुचि नहीं लेने के कारण इन्हें परिवार से अलग कर दिया गया। बाँटवारे में इन्हें कुछ भी नहीं मिला। घर के पीछे छप्पर में जूता सीने और बनाने का कार्य करने लगे। इतने नि:स्पृह और निर्लोभी थे कि जूते बनाने और सिलाई से जो कुछ मिलता, उसे साधु-सन्तों पर खर्च कर देते थे। इस प्रकार वे आजीवन अपने परिश्रम की कमाई खाते रहे। धर्म साधना की ओट में समाज पर भार नहीं बने। पहला ही संन्यास धर्म का सूत्र अपने आचरण से समाज को दिया कि 'परिश्रम करके खाओ और ईश्वर साधना करो'। यह भी स्पष्ट है कि वे जीवन में कोई विशेष आर्थिक प्रगति नहीं कर पाए। उन्होंने कोई भी धर्म-स्थान, मंदिर इत्यादि भी नहीं बनवाया। इनकी गरीबी तत्कालीन समाज में उपहास का कारण बनी। परन्तु ये अपने भक्ति-पथ से तनिक भी विचलित नहीं हुए –

दरिदु देखि सभ को हंसे ऐसी दसा हमारी।
असट दसा सिधि कर तलै, सभ कृपा तुमारी।।

संसार की दृष्टि से मेरी दशा ऐसी है कि सभी लोग मेरी गरीबी की हँसी उड़ाते हैं, लेकिन आन्तरिक दृष्टि से इतना सम्पन्न हूँ कि अठारह सिद्धियाँ मेरे हाथों के नीचे वास करती हैं, प्रभु यह सब तुम्हारी ही कृपा है। इनकी भक्ति साधना एवं ज्ञान से प्रभावित होकर मीराबाई ने इन्हें अपना धर्म-गुरु स्वीकार किया है –

गुरु रैदास मिले मोहि पूरे, धुर तै कलम भिड़ी।
सतगुरु सैन दई जब आके, जोत रली।
सतगुरु संत मिले रैदासा, दीन्ह सुरत सहदानी।

अपने धर्म-गुरु सन्त रविदास को मीराबाई एक मूल्यवान हीरा भेंट करना चाहती थीं, जिसे बेचकर वे सुखी जीवन बिता सकें। परन्तु रविदासजी ने विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। मानवतावादी आध्यात्मिक जीवन मूल्यों को उन्होंने पुन: स्थापित किया और बताया कि मानव-प्रेम और प्रभु-प्रेम एक ही हैं, इनमें भेद नहीं किया जा सकता। मानव-प्रेम के बिना प्रभु-प्रेम प्राप्त नहीं किया जा सकता। वन जंगल में भटकने पर प्रभु नहीं मिलते –

वन खोजई पिअ न मिलहिं, वन महि प्रीतम नाहिं।
'रविदास' पिअ है बसि रह्यो, मानव प्रेमहि मांहि।।

मानवीय एकता और सामाजिक समानता में उन्होंने अपना विश्वास प्रकट किया है। वे जन्म के आधार पर किसी भी व्यक्ति को ऊँचा या नीचा नहीं स्वीकार करते। कर्म के आधार पर वे व्यक्ति को श्रेष्ठ और निकृष्ट मानते हैं। मनुष्य जीवन कर्म-प्रधान है। कर्म की उच्चता और निम्नता के आधार पर ही व्यक्ति की पहचान होती है। हिन्दू धर्म-संस्कृति के आधार-स्तम्भ जिसका वर्णन रविदास ने इस प्रकार किया है –

जन्म जाति कूं छाड़ि करि, करनी जान परधान।
इह्यौ वेद कौ धरम है, करै रविदास बखान।।
ब्राह्मण खत्री बैस सूद, रविदास जन्म ते नाहिं।
जो चाहइ सुबरन कउ, पावइ करमन मांहि।।

वे निर्गुण निराकर ईश्वर के साधक हैं। अवतारवाद कर्मकाण्ड मूर्तिपूजा में उनका विश्वास नहीं है। उनकी दृष्टि में सभी धर्म-स्थान एक ही हैं। मंदिर और मसजिद में कोई भेद नहीं है। उन्हें हिन्दू-मुसलमान, राम-रहीम, कृष्ण-करीम, वेद-कतेब, कुरान-पुराण, काशी-काबा में भी कोई भेद दिखाई नहीं देता। उन्हें न तो मंदिर में राम दिखाई देता और न मसजिद में अल्लाह, इसलिए वे न तो मंदिर से प्यार करते हैं और न मसजिद से घृणा। जब तक एक समतावादी दृष्टि विकसित नहीं होती, तब तक धर्म-स्थानों और धर्म-ग्रन्थों का कोई महत्त्व नहीं है –

कृष्ण करीम राम हरि राघव, जब लग एक न पेखा।
वेद कतेब कुरान पुरानन, सहज एक नहीं देखा।।
मसजिद से कुछ घिन नहीं, मंदिर सो नहीं पिआर।
दोउ मह अल्लाह राम नहीं, कह रविदास चमार।।

सभी प्रकार के शुभ पुण्य-कर्म अन्त में मानव सेवा पर ही आकर विश्राम लेते हैं। सेवा ही वास्तविक धर्म है। सेवा के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। सेवा करने से मन शुद्ध हो जाता है। शुद्ध मन ही परमात्मा से जीवात्मा का मिलन करा देता है। अत: सेवा करने का अवसर ढूँढ़ते रहना चाहिए। यदि सेवा दीन-दुखियों, अनाथों की हो, तो यह

सर्वोत्तम पुण्य है। इनकी सेवा ही सच्ची ईश्वर-सेवा है। ऐसे व्यक्तियों की सेवा से परमात्मा मिल जाते हैं –

दीन दुखी करि सेवा मंह, लागि रह्यौ रविदास।
निसि वासर की सेव सै, प्रभु मिलन की आस।।

सभी धर्मों का मूल 'सत्य' है। वेदों का मूल प्रतिपाद्य विषय है ऋतु अर्थात् सत्य। सर्वश्रेष्ठ जीवन वही है, जिसमें सत्य की प्रधानता हो। सत्य के बराबर कोई दूसरा धर्म नहीं है। जो मनुष्य सत्य को छोड़ता है, उसका जीवन मृतक के समान बन जाता है। जब तक हृदय में प्राण हैं, जीते जी सत्य को नहीं छोड़ना चाहिए। इस संसार में सत्य के समान कोई दूसरा नहीं है –

जिन्ह नर सत तिआगिआ, तिन्ह जीवन मिरत समान।
रविदास सोई जीवन भला, जहं सभ सत परधान।।
रविदास सत मत छाड़िए, जा लौ घट में प्रान।
दूसरो कोई धरम नाहिं, जग महिं सत समान।।

अहिंसा में रविदास की पूर्ण आस्था और विश्वास है। परपीड़न, मांसाहार, मद्यपान, अहंकार, भोग-विलास को वे जीवन का निषिद्ध तत्त्व मानते हैं। मांसाहार और मद्यपान को उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया। भोजन के लिये जीव-हत्या करनेवाले यह नहीं सोचते कि यदि उनकी हत्या भी इसी प्रकार की जाए, तो उन पर क्या गुजरेगी। प्रत्येक जीव में ब्रह्म का वास है, अत: जीव-हत्या कदापि नहीं करनी चाहिए –

रविदास मूंडह काटि करि, मूरख कहत हलाल।
गला कटावहु आपना, तउ का होहइि हाल।।
प्रानी बध नहिं कीजियहि, जीवह ब्रह्म समान।
रविदास पाप नाहिं छूटइ, करोर गउन करि दान।।
सुरसरि सलल कृत बारुनी रे संत जन करत नहीं पान।

सन्त कवि कबीर ने भी मांसाहार का विरोध किया है –

मुरगी मुल्ला से कहै, जिबह करत है मोहि।
साहिब लोक मांगसी, संकट परिहै तोहिं।।

सूफी सन्त महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भी मांस-भक्षण और प्राणी-हत्या का निषेध किया है –

जिन्ह जस मांसू भखा पराया, तस तिन्हकर लेई औरन काया।।

रविदासजी का विचार है कि परब्रह्म इस सृष्टि की रचना करनेवाला है। वही इसका संहारक भी है। वह धर्म, अधर्म, मोक्ष, जरा और मृत्यु के बन्धन से परे है। फिर भी प्रत्येक प्राणी के हृदय में उसका वास है। सारा आत्मसुख स्वयं के अनुभवजन्य सत्य प्रकाश में ही प्राप्त होता है –

है सब आतम सुख स्वयं प्रकाश सांचो।
निरंतर निराहार कलपति ये पाँचों।।
आदि मध्य औसान एक रस तार बन्यो हो भाई।
थावर जंगम कीट पतंगा, पूरि रह्यौ हरि राई।।
सिव न असिव, साध अरु सेवक ऊँभै भाव नहिं होई।
सर्वेश्वर स्रबांगी, सरबगति, करता हरता सोई।।
धरम अधरम मोछि नहिं बंधन, जरा मरन भव नासा।
द्रिस्टि अद्रिस्टि ग्येय अरु ग्याता एक मेक रैदासा।।

संसार में जीवन और समय कभी भी रुकता और थकता नहीं है। जो दिन आता है, वह उसी तरह जाएगा भी। यहाँ सभी यात्री हैं, सभी को जाना पड़ेगा। सभी प्राणियों के सिर पर मृत्यु सवार है। सांसारिक मोह के कारण मनुष्य आत्मज्ञान के प्रति सोया पड़ा है। अब जागकर अपने स्वरूप को समझ ले। यहाँ जीवन और जगत से सम्बन्ध स्थायी और शाश्वत नहीं है –

जो दिन आवहि सो दिन जाही, करना कूचु रहनु थिरु नाहि।
संगु चलत है हम भी चलना, दूरि गवनु सिर उपरि मरना।
किआ तू सोइआ जागु इआना, तै जीवनु जगि सचु करि जाना।।

रविदासजी की वाणी में माया के स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही रूपों का वर्णन मिलता है। मनुष्य भौतिक सुखों की अधिकाधिक प्राप्ति के लिये ही माया का विस्तार करता है। परन्तु यह माया का फैलाव प्रत्येक मनुष्य को दुखी करता है।

जीवन-निर्वाह में सन्तोषवृत्ति न रखने के कारण मनुष्य तृष्णा की धारा में डूबते हैं। माया का परिणाम अन्ततः दुखदायी ही है।

माया में आसक्त मनुष्य-जीवन की विडम्बना को उन्होंने इस प्रकार प्रस्तुत की है –

माया कै भ्रमि कहां भुल्यौ, जाहिगौ कर झारि।
देखि धौं इहां कौन तेरौ, सगा सुत नहीं नारि।।
तोरि उतंग सब दूर करि हैं, दैहिंगे तनु जारि।
प्रान गयैं कहु कौन तेरौ, देखि सोच विचारि।।

मन एवं इन्द्रियों को पूर्णतया वश में रखकर और सुख दुख को एक समान समझकर संसार में अलिप्तता रखने से 'अमृतपद' प्राप्त होता है। रविदासजी परोपकार सद्भाव दया, करुणा, नम्रता, समता, सहयोग, दीनता, क्षमा, संयम,

शील और संतोष को जीवन का स्पृहणीय गुण मानते हैं। इन गुणों को अपनाने से मनुष्य का जीवन पूर्ण सुखी और सार्थक बनकर परम आनन्दमय हो जाता है। यह स्वस्थ और परम सात्त्विक जीवन उनकी भक्ति का आधार-स्तम्भ है। ऐसे महान सन्त को ही सन्त शिरोमणि तथा भगवान बुद्ध के **'अप्प दीपो भव'** की संज्ञान से अभिहित करना सार्थक है। इनके अनुसार वही साधु श्रेष्ठ है, जिसके हृदय में पंच विकार नहीं हैं, जो निर्वैर है, जो कभी असत्य वचन नहीं बोलता, अहंकार, तृष्णा और घृणा त्यागकर जिसने समता भाव धारणा कर लिया है। परपीड़ा को अपनी पीड़ा अनुभव करते हुए जो सदा परोपकार में लगा हुआ है। ऐसे सच्चे दुर्लभ सन्त परमात्मा के समान ही हैं। इनके हृदय में हरि सदैव निवास करते हैं –

रविदास कहै जाके रिदै, रहे रैन दिन राम।
सो भगता भगवंत सम, क्रोध न व्यापै काम।।
रविदास सोइ साधु भलो, जउ जानहिं पर पीर।
पर पीरा कहुं पेखि के, रहवे सदहि अधीर।।
रविदास सोइ साधु भलो, जउ रहइ सदा निर्वैर।
सुखदायी समता गहइ, सभनहिं मांगहि खैर।।
रविदास सोह साधु भलो, जो पर उपकार कमाय।
जाइ सोई कहहि बइसेह करहि, आपा नहिं जताय।।
रविदास सोई साधु भलो, जिहि मन निर्मल होय।
राम भजहि विषया तजिहि, मिथभाषी न होय।।
रविदास सोई साधु भलो, जो मनह दोष मिटाय।
उर मंह आपा न थापइ, तृस्ना आस जलाय।।
रविदास सोइ साधु भलो जउ जग महि लिपत न होय।
गोविंद सो रांचा रहइ, अरु जानहिं नहिं कोय।।

हानि, लाभ, सुख, दुख, मान, अपमान को समदृष्टि से देखनेवाला मनुष्य ही उनकी दृष्टि में सच्चा परमार्थी है। गरीबों, दीन-दुखियों की यथायोग्य सेवा-सहायता करने से परमात्मा मिलते हैं। वे ऐसी शासन-व्यवस्था के समर्थक थे, जिसमें सबको एक समान स्वतन्त्रता मिले। छोटे-बड़े का भेद नहीं हो। सभी को भरपेट भोजन प्राप्त हो। भोजन का अधिकार अभी कुछ दिनों पहले ही लागू हुआ है।

वर्तमान सरकार का भी ओजस्वी नारा है – 'सबका साथ सबका विकास' जो मानवता के हित को दृष्टिगत रखकर ही दिया गया है। 'भूख से कोई व्यक्ति नहीं मरे' यह श्रेष्ठ विचार है। गुरु रविदास पन्द्रवीं शताब्दी में ही यह सब उद्घोष कर चुके थे –

ऐसा चाहौ राज हो, जहाँ मिले सबन को अन्न।
छोटा बड़ो सभ सम बसै, 'रविदास' रहे प्रसन्न।।

संत रविदास ने धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्र में अध्ययन के नए आयाम दिए हैं, वे एक साथ ही सन्त कबीर की भाँति समाज सुधारक, पथ प्रदर्शक और लोक जीवन के सफल शिक्षक थे। उन्होंने निर्भीक होकर जीवन और जगत के सत्य का उद्घाटन किया। उन्होंने अपने आत्मविवेक और कर्त्तव्यपरायणता से समाज की दिशा और दृष्टि निराशा से आशा की ओर, व्यक्तिगत स्वार्थ से सामाजिक परार्थ की ओर, रूढ़ि, रीति और अन्धविश्वासों से विवेक की ओर, रूढ़िगत कर्मकाण्ड एवं अन्धश्रद्धा भक्ति से तर्कपूर्ण अध्यात्म की ओर मोड़ दी।

उन्होंने तत्कालीन भारतीय जनमानस में विलुप्त हुए आत्मविश्वास को जाग्रत किया। वर्णाश्रम धर्म की जन्म-आधारित मान्यता के कारण पतन के गर्त में धँसते हुए समाज को उबारा। वर्ण-व्यवस्था की कर्म-आधारित नई व्याख्या उनकी महत्त्वपूर्ण देन है, जिसे किसी भी हठ या दुराग्रह से भुलाया नहीं जा सकता। '**सर्वे भवन्तु सुखिनः**' और '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' जैसे भारतीय धर्म-संस्कृति के आदर्श में उन्होंने अपने विवेक, भक्ति और आत्मबल से प्राण फूँका –

जग में बैरी कोई नहीं, सब हैं अपने मीत।
रैदास सबन ते राखिये, निज कुटुंब सी प्रीत।।

उनकी वाणी में कठोरता, तिरस्कार और अक्खड़पन का भाव नहीं है। समदृष्टि से तटस्थ होकर बिना किसी पक्षपात के वे अपनी बात कहते हैं। वे सद्गुणों को आत्मसात् कर लोक शिक्षक के रूप में स्वस्थ मानव मूल्यों की स्थापना करते दिखाई देते हैं। आधुनिक विज्ञान-प्रधान युग में जहाँ धर्म, समाज, राजनीति, शिक्षा-संस्कृति और साहित्य में वाद और दलबन्दी बढ़ती चली जा रही है, वहीं सन्त रविदास की मानवता की पोषक वाणी समस्त वाद और दलबंदी से सदा अछूती है। वह विश्वबन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत होकर मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है, यही मानव जीवन का परम उद्देश्य है। ऐसे महान सन्त को सम्पूर्ण मन और हृदय की भावमयी श्रद्धा-भक्ति से अनन्त प्रणाम ! ○○○

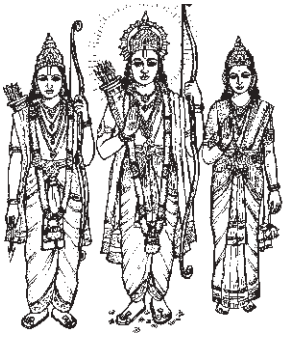

रामराज्य का स्वरूप (५/१)

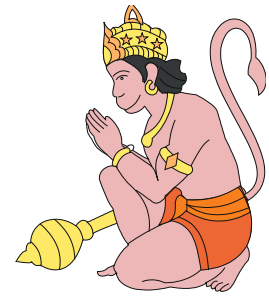

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।।
७/२१/०

श्रद्धेय स्वामीजी महाराज, उपस्थित कथा-रसिक बन्धुओ, भक्तिमती देवियो, पिछले चार दिनों से रामराज्य के सन्दर्भ में चर्चा आपके समक्ष चल रही है। उसका बड़ा ही विलक्षण संक्षेपीकरण आदरणीय स्वामीजी महाराज के द्वारा नित्य कर दिया जाता है। वह संक्षेपीकरण अपने आप में बड़ा अद्भुत होता है। मुझे कुछ भी दुहराने के लिये शेष नहीं रह जाता। आइए, इसी क्रम-परम्परा पर दृष्टि डालने की चेष्टा करें।

रामराज्य महाराज श्रीदशरथ का स्वप्न था। पर ऐसा स्वप्न जो साकार नहीं हो पाया। इसे अगर स्थूल ऐतिहासिक सन्दर्भ में देखें, तो इसमें निमित्त मन्थरा और कैकेयी बनी। पर यह केवल त्रेतायुग का ही सत्य नहीं है। आज के युग का भी सत्य वही है। जब भी रामराज्य की स्थापना का प्रयत्न किया जायेगा, तो उसमें मन्थरा और कैकेयी बाधक बनेंगी। कैकेयी क्रियारूपा हैं। सृष्टि क्रिया के द्वारा संचालित हो रही है। व्यक्ति के द्वारा निरन्तर क्रिया हो रही है। क्रिया का परित्याग कर पाना सरल नहीं है, सम्भव भी नहीं है। यद्यपि महाराज दशरथ के जीवन में क्रिया का परित्याग का वर्णन किया गया है। महाराज दशरथ के चरित्र में वैराग्य की कमी थी। मनु के रूप में भी उनमें वैराग्य का अभाव था। पर वह वैराग्य उनके अन्त:करण में अन्त में उत्पन्न हो गया। वस्तुत: यह भगवान राम के पिता के प्रति प्रीति और महान कृपा का ही परिचायक है। प्रत्यक्ष रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज श्रीदशरथ के साथ बड़ा निष्ठुर व्यवहार हुआ। इतने उत्कृष्ट चरित्रवाले महापुरुष के जीवन में रामराज्य की स्थापना का जो महान संकल्प उदित हुआ, वह संकल्प पूरा नहीं हो पाया। पर गहराई से अगर विचार करके देखें, तो महाराज दशरथ के जीवन की अपूर्णता का निराकरण भी भगवान श्रीराम के वनगमन के कारण ही हुआ। महाराज श्रीदशरथ महान ज्ञानी हैं। मूर्तिमान वेद के स्वरूप हैं, पर उनके जीवन में क्रिया के प्रति आसक्ति है। भगवान राम जानते थे कि हमारे पिताजी मुझे राज्य सिंहासन पर बैठाने के लिये बड़े व्यग्र हैं, पर उनके अन्त:करण में कैकेयी जी के प्रति आसक्ति है।

महाराज दशरथ के चरित्र में कैकेयी के व्यवहार के द्वारा यह जो प्रतिकूलता आई, उस प्रतिकूलता का परिणाम यह हुआ कि उनके जीवन में दुख और दोष की अनुभूति हुई। दुख की सृष्टि कैकेयी द्वारा की गयी, दशरथ को दोष रूपी सृष्टि का अनुभव कैकेयी के व्यवहार के कारण हुआ और तब अन्त में वे कैकेयी के भवन का परित्याग कर देते हैं और कैकेयीजी के भवन का परित्याग करके कौशल्याजी के भवन में चले जाते हैं। ऐसा रामायण में वर्णन आता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि साधना की दृष्टि से कि साधक को क्रिया के दोषों का, क्रिया से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का अनुभव होता है, पग-पग पर दु:ख और दोष की अनुभूति होती है, तो उसका परिणाम यह होता है कि उसके मन में क्रिया के प्रति वैराग्य का उदय होता है और क्रिया से वैराग्य होने पर वह प्रवृत्ति के मार्ग को छोड़कर, कैकेयीजी के महत्त्व को छोड़कर कौशल्याजी के महल में जाने का तात्पर्य यह है कि कौशल्याजी ज्ञानमयी हैं, जिस समय वैराग्य उत्पन्न होगा, तो वैराग्य का फल ही ज्ञान है। इसलिए कैकेयी के प्रति जब वैराग्य का उदय हुआ, तो ज्ञान रूपा कौशल्या के भवन में वे गये और इस तरह से महाराज श्रीदशरथ के जीवन में अन्ततोगत्वा इस प्रसंग में वैराग्य की

पूर्णता आ गई और वैराग्य की परिपूर्णता के बाद जो ज्ञान की परिपूर्णता है, वह लंका के युद्ध के बाद उनमें आती है। जब लंका का युद्ध समाप्त हुआ और इन्द्र ने महाराज दशरथ को सूचना दी कि भगवान श्रीराम ने रावण का वध कर दिया, तो महाराज श्रीदशरथ का वात्सल्य, वात्सल्य से भरा हुआ उनका जो हृदय था, उस हृदय में वही स्वर गूँजा, जो पहले गूँजा करता था। उन्होंने बड़े उत्साह से इन्द्र से पूछा क्या मेरे पुत्र ने रावण का वध कर दिया? इन्द्र को थोड़ी हँसी आई। भगवान को भी भगवान के रूप में न देखकर अपने पुत्र के रूप में देख रहे हैं। पर महाराज दशरथ के हृदय की दृढ़ भावना को दृष्टिगत रखकर वे मौन रहे और उन्होंने कहा – हाँ महाराज, श्रीराम ने रावण का वध किया। महाराज श्रीदशरथ ने कहा कि मैं अपने पुत्र से मिलना चाहता हूँ। इन्द्र ने व्यवस्था की और विमान पर बैठकर महाराज श्रीदशरथ लंका के रणांगण में आए।

भगवान श्रीराम ने महाराज दशरथ की भावना का समादर किया। भगवान श्रीराम लक्ष्मणजी के साथ उठकर खड़े हो गए और –

अनुज सहित पद बंदन कीन्हा। ६/१११/२

रामायण के ये दो प्रसंग जो हैं, उसमें एक बड़े महत्त्व का सूत्र है। भगवान राम जब मनु के सामने आए थे, तब भी अकेले नहीं आए थे। श्रीसीताजी को साथ लेकर आए थे और आज जब महाराज दशरथ को प्रभु ने प्रणाम किया, तो अकेले प्रणाम नहीं किया, लक्ष्मण के साथ प्रणाम किया। पर अन्तर क्या है? जिस समय लंका के रणांगण में महाराज दशरथ आए, उस समय भी श्रीसीताजी विद्यमान थीं। तो साधारणतया युक्तिसंगत तो यही प्रतीत होता है कि भगवान राम और श्रीसीताजी दोनों महाराज दशरथ के चरणों में प्रणाम करते, पर गोस्वामीजी कहते हैं कि नहीं – 'अनुज सहित पद बंदन कीन्हा।' वहाँ पर लक्ष्मण सहित भगवान राम उठकर दोनों भाई प्रणाम करते हैं। इसका सूत्र क्या है? श्रीसीताजी भक्तिरूपा हैं और लक्ष्मणजी मूर्तिमान वैराग्य हैं –

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर।।
२/३२१/०

जब लीला का विस्तार करना है, तो भक्ति को लेकर सामने आए और जब लीला को समेटना है, तो वैराग्य को लेकर आए। ये दोनों पक्ष हैं। जब महाराज दशरथ की भावना को पूर्ण करने के लिये पुत्र के रूप में जन्म लेनेवाले हैं, उनकी वात्सल्यमयी भावना को परिपूर्ण करनेवाले हैं, तब वात्सल्यमयी सीताजी के साथ आकर मानो दशरथ की भावना को उन्होंने स्वीकार किया और उसे चरितार्थ किया। पर आज प्रभु निर्णय कर चुके हैं कि जैसे महाराज दशरथ का रामराज्य का जो संकल्प था, वह पूरा नहीं होने दिया। यहाँ एक बड़े महत्त्व का सूत्र ध्यान रखिएगा कि भक्तों के जीवन में दो स्थिति आती है। कभी तो भगवान भक्तों का संकल्प पूरा करते हैं और कभी ऐसा भी होता है कि वे भक्तों के संकल्प को पूरा नहीं होने देते। अगर वह सजग भक्त है, तो दोनों का आनन्द लेगा। जब भगवान संकल्प की पूर्ति करते हैं, तो यह उनका वात्सल्य है, उनकी करुणा है, उनकी कृपा है, लेकिन जब भगवान संकल्प की पूर्ति नहीं करते, तो उसका अभिप्राय है कि भगवान उस समय उस साधक के अन्त:करण में कामना की पूर्ति के स्थान पर वैराग्य की सृष्टि करना चाहते हैं और कामना की पूर्ति में वैराग्य नहीं हो सकता है, इसलिए कभी ऐसा भी होता है कि भगवान भक्तों के संकल्प को पूरा नहीं करते। तो महाराज श्रीदशरथ का संकल्प जो पूरा नहीं हुआ उसको आप उस अर्थ में न ले लीजिएगा, जैसाकि विनोद में एक-दो दिन पहले हमारे कई स्नेहपात्र लोगों ने भी कहा कि श्रीराम ने दशरथजी के साथ भी इतनी कठोरता की। इस कठोरता का अभिप्राय यह है – माँ के दो रूप हैं, एक जब वह बालक को मिठाई देती है और दूसरा वह जब बालक को फोड़ा हो जाने के बाद उसे कटवाने का कष्ट भी –

मातु चिराव कठिन की नाईं। ७/७३/८

माँ बड़ी कठोर बनकर बालक के शरीर में आए हुए फोड़े को कटवा देती है। माँ के दोनों ही रूप हैं और ईश्वर के भी ये दोनों ही रूप हैं। इन दोनों का अनुभव महाराज श्रीदशरथ को जीवन में होता है। एक ओर भक्ति और लीला का इतना दिव्य रस, इतना दिव्य सुख महाराज श्रीदशरथ ने पाया कि ऐसा सौभाग्य संसार में किसी को नहीं मिला –

दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं।
अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं।। २/२०८/८

जिनके समान सौभाग्यशाली संसार में कोई हुआ ही नहीं। गोस्वामीजी ने कहा कि ब्रह्मा से किसी ने कह दिया कि आप ने जो सृष्टि बनाई, उसमें गुण-दोष भी है, इसलिए आपकी रचना को देखकर दोषों पर दृष्टि जाती है और श्रीराम सर्वथा

दोषमुक्त हैं, परिपूर्ण हैं, पर जाननेवाले जानते हैं कि आपने उनका निर्माण नहीं किया। तो ब्रह्मा ने तुरन्त यही कहा कि मैंने भले ही संसार का निर्माण करके यश न पाया हो, पर राम को अपना पुत्र बनानेवाले को बनाकर तो मैंने बड़प्पन पा ही लिया। मैंने दशरथ का निर्माण कर दिया। बोले –

जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ विधाता। १/१५/८

ब्रह्मा भी दशरथ को बना करके धन्य हो गए। यह भगवान की करुणा का एक पक्ष था, जो उन्होंने दशरथ के साथ किया। भगवान भक्तों को रस का दान देते हैं, पर रस का दान देने के साथ-साथ वैराग्य और ज्ञान दिए बिना नहीं मानते। इसलिए लंका के रणांगण में प्रभु ने निर्णय किया कि अब लीला के विस्तार का समय नहीं है, अब समेटने का समय है। महाराज दशरथ ने भक्ति का रस तो बहुत पा लिया, पर अब वैराग्य और ज्ञान की अपेक्षा है। वैराग्य की भूमिका रामराज्य में बाधा के रूप में बन गई। तब लंका के रणांगण में गोस्वामीजी ने कहा कि पहले तो लक्ष्मणजी के साथ आकर भगवान राम ने दशरथजी को प्रमाण किया और उनकी भावना की तृप्ति के लिए भगवान श्रीराघवेन्द्र ने महाराज श्रीदशरथ से यह कहा –

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ।
जीत्यों अजय निसाचर राऊ।। ६/१११/३

पिताजी, आपके पुण्य के प्रभाव से ही रावण मारा गया। मैं आपका कृतज्ञ हूँ। पर उसके पश्चात? गोस्वामीजी ने सूत्र दिया –

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना।
चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना।। ६/१११/५

भगवान श्रीराम की आँखे दशरथजी से मिलीं और भगवान ने महाराज श्रीदशरथ को देखकर मानो बोध करा दिया। इसका अर्थ क्या है? यदि रंगमंच पर कोई अभिनेता आपका बेटा बने और बेटे के समान वह आपकी आज्ञा का पालन करे, आपकी पूजा करे, सम्मान करे, तो वह तो उसका कर्तव्य ही है, पर परदा गिरने के बाद भी उस नाटक में बने बेटे के पीछे-पीछे आप चल पड़ें कि बेटा, तुम तो बड़े आज्ञाकारी हो, तुमने बड़ी सेवा की है, हम तुम्हारे साथ ही रहेंगे, तब तो नाटक का सारा रूप ही अस्त-व्यस्त हो जाएगा। भगवान श्रीराघवेन्द्र का मानो संकेत यह था कि पिताजी, अब लीला हो चुकी, मैं पुत्र था, आप पिता थे और रंगमंच पर यह अभिनय पूर्ण हुआ। गोस्वामीजी ने कहा कि ज्योंही दशरथजी को दृष्टि मिली, ज्ञान का, दृढ़ बोध का उदय होता है। जब ज्ञान का उदय होता है, तब गोस्वामीजी कहते हैं –

चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना।।

और तब जब दशरथजी विदा होने लगे, तो भगवान श्रीराम ने उनके चरणों में प्रणाम नहीं किया। अपितु

बार बार करि प्रभुहि प्रनामा।
दसरथ हरषि गए सुरधामा।। ६/१११/८

प्रभु के चरणों में प्रणाम करके दशरथ स्वर्ग की ओर चले जाते हैं।

महाराज श्रीदशरथ के प्रति भगवान की जो निष्ठुरता है, वह उनको ज्ञान और वैराग्य देने के लिये ही है। यही उनकी भूमिका थी, जो महाराज श्रीदशरथ के द्वारा, महाराज दशरथ के चरित्र में पूरी हुई। किन्तु रामराज्य की स्थापना का जो संकल्प है, वह महाराज दशरथ के लिये सम्भव नहीं है। अब सम्भव नहीं होने में कैकेयी बाधक बनी, तो क्रिया के दो दोषों की ओर मैं और संकेत करना चाहूँगा। महारानी कैकेयी का जो व्यक्तित्व है, वह बड़ा विचित्र और उलझा हुआ है। उनके चरित्र को अगर देखें, तो एक ओर बड़ी ऊँचाई दिखाई देती है और दूसरी ओर उनके चरित्र में उतनी ही बड़ी सांघातिक दुर्बलताएँ भी दिखाई देती हैं। इसका मूल कारण क्या है, इसको गोस्वामीजी ने दो रूपों में कहा। एक तो कैकेयीजी के मूल संस्कार और दूसरा कैकेयी के जीवन में संग के प्रभाव से आने वाले सद्गुण। कभी-कभी व्यक्ति के जीवन में ये दोनों पक्ष दिखाई देते हैं। एक तो वे हैं, जो पूर्व-पूर्व जन्मों से उसके अन्तःकरण में संग्रहित है और वह संस्कार लेकर उसका जन्म हुआ। जीवन में कोई वातावरण ऐसा मिल गया। वातावरण संस्कार से भिन्न है, तो ऐसी परिस्थिति में संस्कार की भिन्नता के कारण, संग का जो तात्कालिक प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है और संग के प्रभाव का परिणाम उसके आचरण में दिखाई देता है। लेकिन वे जो छिपे हुए संस्कार होते हैं, वे भीतर छिपे हुए रहते हैं। उसका रामचरित मानस में बड़ा सुन्दर दृष्टान्त दिया गया है। **(क्रमशः)**

जीवन की सफलता में दिव्यांगता बाधक नहीं : उम्मुल खेर

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

कहते हैं कि परिश्रम, लगन, आत्मविश्वास और संघर्ष के द्वारा जीवन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में अपने जीवन में चुनौतियों से जूझता है। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए अपने अन्तर के आत्मविश्वास को जागृत करना होगा।

उम्मुल खेर

मनुष्य का जीवन संघर्ष से घिरा हुआ है। यही संघर्ष हम सबको जीवन में सफलता एवं सीख प्रदान करता है। संघर्ष मनुष्य को साहसी, आत्मविश्वासी, आत्मनिर्भर बनाता है। यह मानव के जीवन को निखारता है, संवारता है और जीवन का गठन करता है। संघर्ष से व्यक्ति अपने जीवन में अनुभव प्राप्त करता है और सदैव सक्रिय होकर जीवन जीना सीखता है। संघर्ष से हमें केवल सफलता ही नहीं मिलती बल्कि इससे हम अपने जीवन में आनन्द प्राप्त करते हैं। संघर्ष का नाम ही जीवन है, अथवा संघर्ष मानव जीवन का एक महत्त्वपूर्ण भाग है।

संघर्षपूर्ण बचपन

ऐसा ही एक व्यक्तित्व उम्मुल खेर का है, जिनका जीवन आत्मविश्वास एवं संघर्ष की मिसाल है, जो जीवन में सफलता की कसौटी और प्रेरणा की स्रोत हैं। उम्मुल खेर का जीवन बचपन से ही संघर्षपूर्ण और चुनौतियों से भरा रहा। उम्मुल का जन्म राजस्थान के पाली मारवाड़ क्षेत्र में हुआ। पाँच वर्ष की आयु में उनकी माँ सिजोफ्रेनिया से ग्रस्त हो गई। इस कारण माता को विद्यालय में पढ़ाना छोड़ना पड़ा। परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी बिगड़ गई कि दो वक्त की रोटी जुटा पाना कठिन हो गया। उम्मुल बचपन से ही दिव्यांग थी। उन्हें फ्रेजाइल बोन डिसऑर्डर का रोग था। जिसके कारण उम्मुल को १६ फ्रेक्चर हुए और ८ बार सर्जरी हुई।

उनके पिता फुटपाथ पर ठेला लगा कर सामान बेचा करते थे। परन्तु कई बार उनके ठेले को हटा दिया गया और घर में आर्थिक तंगी आने लगी। वे दिल्ली के हजरत निजामुद्दीन बस्ती के पास बारापुला में झुग्गी झोपड़ी में रहते थे और निजामुद्दिन सड़क तथा स्टेशन के बाहर फुटपाथ पर ठेला लगाकर सामान बेचा करते थे। तपती धूप में अधिक परेशानियाँ होती थी बरसात में पानी छत से टपकता था, और वर्षा के दिन पास के नाले का पानी घर में आ जाता था। कई बार १५ दिनों तक फुटपाथ पर ठेला का लगाने नहीं दिया जाता था और घर में आर्थिक तंगी आने लगी। जब उम्मुल सातवीं कक्षा में अध्ययनरत थीं, तब २००१ में निजामुद्दिन से झुग्गी झोपड़ियों को हटा दिया गया और उनके पिता का काम भी छूट गया। वे बेघर हो गए।

कई बार सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं के कारण संघर्ष करने का साहस नहीं हो पाता, ऐसी स्थिति में शारीरिक एवं मानसिक शक्ति तथा दृढ़ निश्चय एवं दृढ़ इच्छा शक्ति से संघर्ष करना पड़ता है।

बिना पढ़ाई के नहीं जीना

उम्मुल की पढ़ाई को लेकर पारिवारिक विरोधाभास होने लगा। उम्मुल को अध्ययन में बहुत अधिक रुचि थी। उम्मुल जब प्राथमिक विद्यालय में पढ़ती थीं उसी समय उनकी माँ की मृत्यु हो गई। उनके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। परन्तु उनका परिवार विशेषकर उनकी सौतेली माँ नहीं चाहती थीं कि उम्मुल आगे की पढ़ाई करे। उन्मुल में अध्ययन के प्रति इतना अधिक प्रेम था कि वे कहती थीं, अगर जीवित रहूँगी, तो पढ़ाई करूँगी और अगर नहीं पढ़ सकी, तो मर जाऊँगी। पढ़ने के प्रति अत्यधिक रुचि के कारण उन्होंने परिवार से बगावत की और घर छोड़कर एक छोटा-सा कमरा किराये में लेकर रहने लगीं। उम्मुल नौवीं कक्षा में पढ़ती थीं और अपनी पढ़ाई तथा घर का खर्च चलाने के लिए झुग्गियों के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाती थी। कई वर्षों तक आठ-आठ घण्टों तक ट्यूशन पढ़ाकर वे अपना तथा अपनी शिक्षा का खर्च पूरा करती थीं। उनकी मेहनत केवल अपने अध्ययन तक ही सीमित नहीं थीं बल्कि वे अपनी पूरी लगन और मेहनत से बच्चों को पढ़ाया भी करती थीं। जिससे बच्चों के अभिभावक उम्मुल से प्रसन्न थे।

मेहनत और लगन

उम्मुल मेहनत और लगन से पढ़ाई करती थीं। उनकी नि:शुल्क शिक्षा दिव्यांग विद्यालय में हुई। उन्होंने अपनी लगन और परिश्रम से दसवीं में ९१ प्रतिशत अंक प्राप्त किये और एक ट्रस्ट की तरफ से होनहार उम्मुल को छात्रवृत्ति मिल गई। बारहवीं तक की पढ़ाई छात्रवृत्ति से पूरी की और १२वीं में ९० प्रतिशत अंक अर्जित कर प्रथम स्थान प्राप्त किया। उसके बाद उम्मुल ने दिल्ली विश्वविद्यालय के गार्गी कॉलेज से एप्लाइड साइकॉलोजी में स्नातक की डिग्री प्राप्त की। कॉलेज जाना भी एक दिव्यांग के लिए चुनौतीपूर्ण था क्योंकि बोन फ्रेजाइल डिसऑर्डर के कारण बोन फ्रेक्चर होने का हमेशा डर रहता था। इसलिए कॉलेज जाते हुए तथा पैदल चलते हुए उन्हें बहुत सावधान रहना पढ़ता था। उनका एक पाँव छोटा था जिसके कारण उन्हें हॉई हील शू पहनने पड़ते थे। उनके जीवन में इतना संघर्ष देखने के बाद तो ऐसा लगता है कि मानो सब लोगों के हिस्से का संघर्ष उनके नाम पर ही लिख दिया गया हो। संघर्ष व्यक्ति को ठोकर खाकर सम्भलना सिखाता है और जीवन के उतार-चड़ाव का सामना करने का साहस देता है।

हिम्मत और हौसला

गरीबी, बोन डिसऑर्डर और पारिवारिक विरोध का सामना करते हुए भी उम्मुल ने हार नहीं मानी। उम्मुल ने जे.एन.यू. से एम.ए. की पढ़ाई के लिए आवेदन किया। वे विश्वविद्यालय मेरिट में आने लगीं और उन्हें २००० रुपए प्रति माह छात्रवृत्ति के रूप में मिलने लगे। उम्मुल ने जे.एन.यू. से इंटरनेशनल रिलेशन में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की।

उम्मुल पढ़ने में तो अच्छी थी ही साथ साथ मेहनती भी थी। जेएनयू के इंटरनेशनल स्टडीज स्कूल से एम.ए. करने के बाद एमफिल कोर्स में प्रवेश लिया। २०१२ में एक एक्सीडेंट के कारण उन्हें अस्पताल में दाखिल होना पड़ा और जिसके कारण उनका ट्यूशन पढ़ाना छूट गया। लेकिन फिर भी उम्मुल ने अपनी हिम्मत एवं जूनून के बल पर पढ़ना जारी रखा। २०१३ में उम्मुल ने जेआरफ की परीक्षा पास की और उसके बाद उन्हें उच्च शिक्षा हेतु २५,००० रुपए प्रति माह छात्रवृत्ति के रूप में मिलने लगे। इस प्रकार उनके अध्ययन में आर्थिक समस्या का निराकरण हो गया।

जे.एन.यू. में उन्हें हॉस्टल, मेस तथा अन्य आवश्यक सुविधाएँ मिलीं। जे.एन.यू. में रहते हुए उम्मुल ने कई अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर दिव्यांग समुदाय का नेतृत्व किया। वर्ष २०१४ में जापान में आयोजित इंटरनेशनल लीडरशीप ट्रेंनिग प्रोग्राम में उम्मुल का चयन हुआ। इससे पहले केवल तीन भारतीय इस प्रोग्राम के लिए चयनित हुए थे। उसके बाद उम्मुल चौथी भारतीय थीं। वे जापान में एक साल रहीं। भारत आने के बाद उम्मुल इसी विश्वविद्यालय से पीएचडी करने लगीं। जनवरी, २०१६ में उन्होंने भारतीय प्रशासनिक सेवा की तैयारी प्रारम्भ की और अपने पहले ही प्रयास में भारतीय प्रशासनिक सेवा की परीक्षा ४२०वीं रैंक के साथ उत्तीर्ण कर सफलता प्राप्त की। भारतीय प्रशासनिक सेवा की परीक्षा की तैयारी करना कठिन होता है, विशेषकर जब एक साथ सारी विपत्तियों का पहाड़ सामने खड़ा हो जाए। परन्तु उसके लिए दृढ़ निश्चय होना चाहिए। कोई आपकी सहायता करे या न करे यह अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होता। जब कोई बड़े स्वप्नों को देखता है, तो उन स्वप्नों को पूरा करने के लिए अधिक साहस का परिचय देने की आवश्यकता होती है।

महाभारत में कौरवों और पाण्डवों के बीच युद्ध में श्रीकृष्ण ने पाण्डवों का मार्गदर्शन किया लेकिन पाण्डवों ने संघर्ष स्वयं किया। भगवान् श्रीकृष्ण यदि पाण्डवों की सहायता करते, तो फिर उन्हें संघर्ष ही नहीं करना पड़ता और फिर पाण्डवों को कोई याद न रखता। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में संघर्ष का सामना करना पड़ता है। जो जीवन में संघर्षों से जूझा है, उसी को सफलता प्राप्त होती है। संघर्ष जीने की कला सिखाता है। जीवन के उतार-चढ़ाव, हार-जीत, अच्छे और बुरे क्षण, ये सब व्यक्ति को अनुभवी बनाते हैं।

झुग्गी में रहने वाली एक गरीब, दिव्यांग बहादुर लड़की ने परिश्रम, लगन एवं आत्मविश्वास के बल पर अपनी गरीबी, दिव्यांगता और बीमारी को परास्त कर अपने लक्ष्य को प्राप्त किया।

जीवन में सफलता प्राप्त करने लिए हर व्यक्ति प्रयास करता है। संघर्षमय जीवन का निर्वहन करते हुए हमें विपरीत परिस्थितियों से हार नहीं माननी चाहिए। व्यक्ति जीवन में कभी अच्छे, तो कभी बुरे समय का सामना करता है, कभी जीवन में उथल-पुथल के थपेड़ों से जूझता है। हर व्यक्ति संघर्ष से अनुभव प्राप्त कर सशक्त होता है और वह अपने संघर्ष के अनुभवों से सीख लेकर अपने लक्ष्य के प्रति अपना जीवन समर्पित करता है।

उम्मुल खेर का यह संघर्षमय जीवन आज के युवाओं के लिए शिक्षाप्रद, मार्गदर्शक एवं प्रेरणा का स्रोत है। वास्तव में संघर्ष ही सफलता की नींव है। ○○○

पृष्ठ ५८ का शेष भाग

क्योंकि यहाँ प्राचीन समय से ही सरस्वती-सरिता प्रवाहित होती रही है। सरस्वती सरिता के इस तट पर इस क्षेत्र के कई प्राचीन स्थल भी हैं। इसी तट पर विश्वामित्रजी ने गायत्री छंद की रचना की थी। इसलिए यहाँ का सबसे मुख्य स्थान सरस्वती घाट है, जहाँ सरस्वती नदी प्रवाहित होती है। एवं सरस्वती जी का अति प्राचीन मंदिर भी है।

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में ऋतुओं का विशेष महत्त्व रहा है। ये हमारे जीवन को प्रभावित करने के साथ ही साथ जन-जीवन से गहरे से जुड़े हुए हैं। इनका धार्मिक और पौराणिक महत्त्व भी है। बसन्त ऋतु इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। इस दिन देवी सरस्वती की आराधना पूजा अर्चना पूरे हर्षोल्लास के साथ की जाती है। बसन्त पंचमी का पर्व हमारे जीवन में नव ऊर्जा का संचार करते हुए निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

जो सतत ज्ञान के पथ पर अग्रसर होते हैं, वह सरस्वती के सच्चे उपासक हैं। जिनके अन्तस् में सात्त्विक ज्ञान की विपुलता है, जो नित नये ज्ञान की खोज में अग्रसर हैं, वही माता सरस्वती के वरद पुत्र हैं। माँ सरस्वती से बड़ा कोई दूसरा वेद नहीं है, उनकी उपासना से बढ़कर कोई दूसरी औषधि नहीं है। ○○○

रुपया-पैसा हमेशा मन को कलुषित करता है। तुम यह सोच सकते हो कि तुम रुपये-पैसे से ऊपर हो और तुम्हें इसका कभी लोभ नहीं होगा। तुम यह भी सोच सकते हो कि तुम कभी भी इसका त्याग कर सकते हो। पर बेटे, इस प्रकार का विचार मन में कभी मत पालो। यह तो एक बारीक छेद पाकर तुम्हारे मन में घुस जाएगा और धीरे-धीरे तुम्हारे बिना जाने तुम्हारा गला घोंट देगा।

श्रीरामकृष्ण रुपये-पैसे का स्पर्श तक नहीं सह सकते थे। उनके वचनों को सदैव स्मरण रखो। तुम संसार में जितनी विपत्तियाँ देखते हो, उन सबका मूल कारण धन ही है। धन ही मनुष्य के मन को अनेकानेक प्रलोभनों में फँसाता है। सावधान !

– श्रीमाँ सारदा देवी

प्रश्नोपनिषद् (२१)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

एवं पृष्टः -

ऐसा पूछे जाने पर –

तस्मै स होवाचातिप्रश्नान्पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि।।२।।(३/२)

अन्वयार्थ – **सः** उन (पिप्पलाद) ने **तस्मै** उसे (कौसल्य से) **उवाच ह** कहा – (तुम) **अतिप्रश्नान्** कठिन प्रश्नों को **पृच्छसि** पूछ रहे हो, (तुम) **ब्रह्मिष्ठः** अतिशय ब्रह्मज्ञ **असि इति** हो, **तस्मात्** अतः **अहम्** मैं **ते** तुम्हें **ब्रवीमि** बताऊँगा।

भावार्थ – उन (पिप्पलाद) ने उन (कौसल्य) से कहा – (तुम) कठिन प्रश्नों को पूछ रहे हो, (तुम) अतिशय वेदज्ञ हो, अतः मैं तुम्हें बताऊँगा।

भाष्य – तस्मै स ह उवाच आचार्यः, प्राणः एव तावत् दुर्विज्ञेयत्वात् विषम-प्रश्न-अर्हः। तस्य अपि जन्मादि त्वं पृच्छसि अतः अतिप्रश्नान् पृच्छसि। ब्रह्मिष्ठः असि इति अतिशयेन त्वं ब्रह्मविद् अतः तुष्टः अहं तस्मात् ते तुभ्यं ब्रवीमि यत् पृष्टं शृणु।।

भाष्यार्थ – वे आचार्य उन (कौसल्य) के प्रति बोले – (एक तो) प्राण का स्वरूप ही दुर्विज्ञेय अर्थात् कठिनाई से ज्ञेय होने के कारण, यह प्रश्न विषम है; उसके भी जन्म आदि के विषय में पूछते हो; अतः तुम अतिप्रश्न पूछ रहे हो। (तथापि) तुम ब्रह्मिष्ठ हो (साकार ब्रह्म या वेद के ज्ञाता हो), ब्रह्म के अत्यधिक उपासक – ब्रह्मवेत्ता हो, अतः मैं सन्तुष्ट हूँ, इसलिये जो तुम्हारे द्वारा पूछा गया है, वह मैं तुम्हें बताऊँगा। सुनो।।२।। (३/२)

आत्मन एष प्राणो जायते। यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्शरीरे।।३।।(३/३)

अन्वयार्थ – **एषः** यह **प्राणः** प्राण **आत्मनः** आत्मा, परम पुरुष से **जायते** जन्म लेता है। **यथा** जैसे **पुरुषे** मनुष्य के देह से **छाया** छाया बनती है, (तथा) वैसे ही **एतस्मिन्** उस परमात्मा में **एतत्** यह प्राण **आततं** आश्रित है। (यह प्राण) **मनोकृतेन** मन की इच्छा या संकल्प के द्वारा **अस्मिन्** इस **शरीरे** शरीर में **आयाति** आता है।

भावार्थ – यह प्राण आत्मा अर्थात् परम पुरुष से जन्म लेता है। जैसे मनुष्य देह से छाया बनती है, वैसे ही यह प्राण उस परमात्मा में आश्रित है। (यह प्राण) मन की इच्छा या संकल्प के द्वारा इस शरीर में आता है।

भाष्य – आत्मनः परस्मात् पुरुषात् अक्षरात् सत्यात् एषः उक्तः प्राणो जायते। कथम् इति अत्र दृष्टान्तः। यथा लोके एषा पुरुषे शिरः-पाणि-आदि-लक्षणे निमित्ते छाया नैमित्तिकी जायते तद्वत् एतस्मिन् ब्रह्मणि एतत् प्राण-आख्यं छाया-स्थानीयम् अनृत-रूपं तत्त्वं सत्ये पुरुषे आततं समर्पितम् इत्येतत् छाया इव देहे मनोकृतेन मनःसंकल्प-इच्छा-आदि-निष्पन्न-कर्म-निमित्तेन इति एतत् – वक्ष्यति हि 'पुण्येन पुण्यम्' (प्र.उ. ३/७) इत्यादि; तदेव 'सक्तः सह कर्मणा' (बृह.उ. ४/४/६) इति च श्रुत्यन्तरात् - आयाति आगच्छति अस्मिन् शरीरे।।

भाष्यार्थ – पूर्वोक्त (मु.उ. २.१.२-३) प्राण – आत्मा अर्थात् परम-पुरुष, अक्षर या सत्य से उत्पन्न होता है। कैसे? इस विषय में यह दृष्टान्त दिया जाता है। जैसे इस संसार में सिर-हाथ आदि अवयवों वाले व्यक्ति को निमित्त (कारण) बनाकर कार्यरूपी छाया उत्पन्न होती है, वैसे ही इस (अक्षर) ब्रह्म में यह प्राण नामक छाया-स्थानीय जो मिथ्या-रूपवाली वस्तु बनती है, वह सत्य पुरुष (ब्रह्म) में समर्पित अर्थात् स्थित है। जैसे शरीर में छाया उत्पन्न होती है, वैसे ही मन द्वारा निष्पन्न संकल्प तथा इच्छा आदि कर्म को निमित्त बनाकर (वह इस शरीर में आता है,) जैसा कि आगे कहेंगे, ''पुण्य के द्वारा पुण्य'' आदि और वैसे ही

अन्य श्रुति में है, ''कर्म के साथ जुड़कर'' वह इस शरीर में आता है।।३।। (३/३)

यथा सम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते। एतान्ग्रामा-नेतान्ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राण इतरान्प्राणान्पृथक्पृथगेव संनिधत्ते।।४।। (३/४)

अन्वयार्थ – यथा जैसे **सम्राट्** सम्राट् **एव** ही (अपने) **अधिकृतान्** अधिकारियों को **एतान्** इन **ग्रामान्** गाँवों और **एतान्** इन **ग्रामान्** गाँवों को **अधितिष्ठस्व** शासन करो, **इति** इस प्रकार (कहकर) **विनियुङ्क्ते** नियुक्त करता है; **एवम् एव** ठीक इसी प्रकार **एषः** यह **प्राणः** मुख्य प्राण **इतरान्** अन्य **प्राणान्** (चक्षु-श्रोत्र आदि) प्राणों को **पृथक् पृथक् एव** अलग-अलग **सन्निधत्ते** स्थापित या नियुक्त करता है।

भावार्थ – जैसे सम्राट् ही अपने अधिकारियों को – इन गाँवों और इन गाँवों को शासन करो – इस प्रकार (कहकर) नियुक्त करता है; ठीक वैसे ही यह मुख्य प्राण अन्य चक्षु-श्रोत्र आदि प्राणों को अलग-अलग स्थापित या नियुक्त करता है।

भाष्य – यथा येन प्रकारेण लोके राजा सम्राट्-एव ग्राम-आदिषु अधिकृतान् विनियुङ्क्ते। कथम्? एतान् ग्रामान् एतान् ग्रामान् अधितिष्ठस्व इति। एवम् एव यथा दृष्टान्तः एषः मुख्यः प्राणः इतरान् प्राणान् चक्षुः-आदीन् आत्मभेदान् च पृथक् पृथक् एव यथास्थानं संनिधत्ते विनियुङ्क्ते।।४।। (३/४)

भाष्यार्थ – जिस प्रकार इस संसार में सम्राट् राजा ही गाँवों आदि में अधिकारियों (जमींदार, सामन्त आदि) को नियुक्त करते हैं। कैसे? इन गाँवों और इन गाँवों की तुम देखभाल करो। इस दृष्टान्त के समान ही यह मुख्य प्राण – नेत्र आदि अपने ही भेदरूपी अन्य प्राणों (इन्द्रियों) को (उनकी) भिन्न-भिन्न (योग्यता के अनुसार) यथास्थान नियुक्त करता है।।४।। (३/४) **(क्रमशः)**

स्वामी अद्भुतानन्द जयन्ती विशेष

साधना का फल तो तुम्हें मिल रहा है

स्वामी अद्भुतानन्द

लाटू महाराज – संसार में धन ही तुम लोगों की साधना है, वहाँ दिन रात उसी के लिये तुम्हें परिश्रम करना पड़ता है। अतः जो साधना करोगे उसी में तो सिद्धिलाभ होगा। तुम लोग तो भगवान की साधना चाहते नहीं, इसीलिए भगवान को पाते भी नहीं।

एक भक्त – संसार में रहने पर रुपया-पैसा तो लगता ही है। आप तो जानते ही हैं कि रुपये-पैसे के बिना गृहस्थी नहीं चलती।

लाटू महाराज – हाँ जानता तो हूँ। परन्तु जैसा चाहोगे, वैसा ही तो मिलेगा। ठाकुर कहा करते थे, उनसे जो कुछ माँगोगे, सब मिलेगा। लेकिन उन्हें चाहने पर सभी चाहों का अन्त हो जाएगा।

एक भक्त – हमलोग तो उन्हें पुकार नहीं पाते महाराज! हमारे जैसे अभागों की पुकार क्या उनके कान तक पहुँचती है?

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज)

लाटू महाराज – अवश्य पहुँचती है। तुमलोगों के पुकार में है रुपया, रुपया, रुपया ! इसीलिए तो वे तुम लोगों को रुपये भेज रहे हैं और जिस दिन इस पुकार के भीतर होगा, 'मैं रुपये, मान, यश आदि कुछ भी नहीं चाहता, केवल उन्हीं को चाहता हूँ' – उसी दिन वे आएँगे। ठाकुर कहते थे, 'भोग रहने से ही योग कम हो जाता है और भोग रहने से दुख बढ़ता है।' ठाकुर दिन-रात हमें यही बात सिखाते थे, ''कहते थे, 'योग-याग में जगे रहना, सोते समय उन्हें पुकारना, काम के बीच उन्हें पकड़ना और सदा उनकी सेवा में लगे रहना।' '' ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (११२)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

पाठकों को निश्चय ही स्मरण होगा कि वर्ष २०१० ई. के अन्त में काशी में पूजनीय रमानन्द महाराज के साथ मेरी भेंट हुई थी। बातचीत के प्रसंग में उन्होंने अपनी कुछ पुरानी डायरियाँ दे दीं कि सम्भवतः इनकी कुछ आवश्यकता पड़ सकती है। डायरी के पन्नों को उलटते हुए मैंने देखा कि वर्ष १९५७ ई. में उसमें उनके द्वारा लिखित कामारपुकुर और जयरामबाटी भ्रमण का एक विवरण है। कई वृत्तान्त और घटनाएँ हमें आकर्षक प्रतीत होने पर इसके कुछ अंश उद्धृत करता हूँ।

श्रीरामकृष्ण

२६-९-१९५७, बृहस्पतिवार

रात के ग्यारह बजे होंगे।

ठाकुर की इच्छा से मैं अनिल महाराज के साथ कल कामारपुकुर-जयरामबाटी जाऊँगा। आज रात में लगभग पौने दस बजे महाराज (प्रेमेश महाराज) के शरीर और पैरों को सहलाते समय इस सम्बन्ध में बातचीत हुई थी। महाराज ने कहा, ''आज तुम्हें कामारपुकुर की मिट्टी खिला दिया है, वहाँ की मिट्टी के प्रति आकर्षण का अनुभव तो हुआ है न? वहाँ छोटे शिशु से थोड़ा-थोड़ा करके (महाराज ने हाथ से दिखाया) बड़े होते-होते अन्त में रामकृष्ण हुए। वहाँ मिट्टी (जमीन) में लोटना।'' आज सुबह लगभग दस बजे महाराज ने कहा था, ''इस तरह से देखकर आना जिससे बार-बार वहाँ दौड़-दौड़कर न जाना हो। हृदय में ठाकुर के साथ लीला-विलास करना, जिससे कोई जान न सकेगा।'' ऐसा कहकर वे आँखें बन्द करके ध्यान करते हुए मानो सब देखने लगे।

आज रात में उन्होंने कहा था, ''श्यामासुन्दरी (श्रीमाँ की माँ) क्या कम थीं ! दूसरों के घर में ढेंकी से धान कूटने का काम करके वे अपने पुत्र-पुत्रियों का भरण-पोषण करती थीं और ठाकुर दा (रामचन्द्र मुखोपाध्याय-श्रीमाँ के पिताजी) सरल व्यक्ति थे। वे लोगों को बुलाकर तम्बाकू पिलाया करते थे। ठाकुर के पिताजी बड़े गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे, उनसे बात करने में लोगों को भय लगता था।''

श्रीरामकृष्ण

२८.०९.१९५७, शनिवार

रात लगभग १०: ३० बजे

पुण्यमय, मधुमय कामारपुकुर

शिवमन्दिर के निकटस्थ एक मिट्टी के दोतल्ले घर में इस समय बिस्तर पर बैठकर लिख रहा हूँ। ठाकुर के शयन-गृह के बरामदे में बैठकर कुछ देर जप किया। घर के भीतर मस्तक से स्पर्श करके पवित्रतम माटी को मस्तक पर धारण करके (शिरोधार्य करके) धन्य हो गया। 'हे ठाकुर ! तुम्हारे इस लीलाक्षेत्र का पवित्र परिवेश मेरी समस्त मलिनता को दूर कर दे, प्रभु ! मेरी समस्त वासना को दूर करो। मुझे ऐसा गढ़कर बना दो, जिससे मैं अपनी सम्पूर्ण सत्ता से, अनन्य मन से तुम्हारा चिन्तन करके धन्य हो जाऊँ। लाखों-लाखों वर्षों के घनीभूत अन्धकार को प्रकाश प्रज्वलित करके क्षण भर में दूर कर दो। यही प्रार्थना करता हूँ।''

पूजनीय अनिल महाराज दर्शनीय स्थानों की महिमा बताते हुए उन्हें दर्शन करने हेतु मुझसे कह रहे हैं। हम तीन लोग प्रातः लगभग ९ बजे ठाकुर और माँ को प्रणाम करके, प्रसादी मिष्टान्न खाकर जयरामबाटी से बैलगाड़ी द्वारा कामारपुकुर आ गए। रास्ते में हमलोग सोच रहे थे कि इसी मार्ग से ठाकुर और माँ ने कितनी ही बार अपने घर से ससुराल हेतु आवागमन किया है। आमोदर नदी के किनारे जिस वटवृक्ष के नीचे माता श्यामासुन्दरी मुड़ी खाती थीं, उसे देखा। स्वामी रामेश्वरानन्द महाराज बड़े ही स्नेहशील हैं। आज कामारपुकुर में भूतिर खाल के निकटस्थ जिस वटवृक्ष के नीचे ठाकुर ध्यान करते थे और माणिकराजा के बगीचे में पुराने (ठाकुर के समय के) दो आम के पेड़ देखे। आज हालदारपुकुर में स्नान किया।

श्रीरामकृष्ण

३०-९-१९५७

समय लगभग २.३०/३.३.० बजे

कामारपुकुर में तृतीय दिवस

सागर की बहू (पत्नी) के साथ बहुत-सी बातें की। पूज्यपाद प्रेमेश महाराज के निर्देशानुसार कल रात में आरती के बाद ठाकुर के मन्दिर और रघुवीर के मन्दिर के सामने नंगे बदन मिट्टी में लोटपोट किया।

कामारपुकुर में तृतीय रात्रि

आज तीसरे प्रहर (अपराह्न) गाँव की ओर घूमने गया था। अबोध दत्त नामक एक बनिया से बातचीत हुई। यह व्यक्ति एक दुकानदार है और इन्होंने माँ को देखा है। दुकान के निकट रास्ते के किनारे वे बीड़ी पीते हुए राधू हाड़ि नामक एक व्यक्ति के साथ बातें कर रहे थे। मेरे उधर से जाते ही उन्होंने आग्रहपूर्वक मुझे कम्बल का आसन देकर बैठाया और बीड़ी पीने को देना चाहा। माँ के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने पर वे बोले – उन्होंने उन्हें किसी विशेष तरह से नहीं देखा है, अन्य दस-पाँच स्त्रियों की तरह ही माँ को देखा है। ऐसा न होने पर माँ की और लीला क्या हुई !

मेरे जीवन की विशेष स्मरणीय घटना

ठाकुर की आरती हो जाने पर वृद्धा कमला माँ के साथ श्रीमाँ के जीवन के विविध प्रसंगों की चर्चा करते-करते मैं उनके घर तक चला गया। उस समय महासप्तमी पूजा की आरती हो रही थी। वृद्धा कमला माँ थोड़ा सा प्रसाद ले रही थीं। उनके साथ बातें करते-करते मैं भी चलने लगा। (ठाकुर के शयन-घर के बाहर खड़े होकर बातें हो रही थीं)

मैं – आपने माँ को उनकी किस आयु में देखा है?

वृद्धा माँ – तब उनकी आयु लगभग छप्पन वर्ष रही होगी।

मैं – उस समय आपकी आयु कितनी थी?

वृद्धा – लगभग बत्तीस वर्ष होगी।

मैं – इस समय आपकी आयु कितनी है? (ठाकुर के अपने हाथ से लगाए हुए आम के वृक्ष के नीचे खड़े होकर, बाहर निकलकर (घूमते हुए?) चलते-चलते।)

वृद्धा माँ – और चार वर्ष हो जाने पर एक सौ वर्ष हो जाएगी। छिमा (श्रीमाँ) के आशीर्वाद से मुझे कभी दवा नहीं खानी पड़ी, बाबा ! उन्होंने मेरे शरीर पर हाथ से सहलाकर आशीर्वाद दिया था।

मैं – माँ ने आपके शरीर पर हाथ से सहलाया था?

वृद्धा माँ – (मेरी पीठ पर हाथ से सहलाते हुए) हाँ, इसी तरह सहलाया था।

मैं – आप मुझे 'तुम' कहिए।

वृद्धा माँ – बाबा, 'तुम' क्या कहते हो?

मैं – आपने कितने दिनों तक माँ की सेवा की थी?

वृद्धा माँ – बहुत दिन, लगभग २०-२५ वर्षों तक। उस समय मेरी आयु बत्तीस वर्ष थी, क्षमता (सामर्थ्य) बहुत थी। (मैं टार्च दिखाते हुए उनके साथ चलने लगा। उनके घर तक जाने में लगभग १५ मिनट लगा था।)

वृद्धा माँ – और क्या बताऊँ, बाबा! माँ के सारे लक्षण देखे हैं।

मैं – आपने माँ को तेल आदि लगाया था तो?

वृद्धा माँ – (अद्‌भुत ढंग से हँसकर) हाँ। माँ को वातरोग था न ! वे कहती थीं – ''अरे कमला ! तेल गर्म करके थोड़ी मालिश कर दो तो।'' मैं माँ के पैर को कन्धे पर रखकर मालिश कर देती थी। माँ को पेट की भी तो बीमारी थी। माँ ने कहा था – ''मेरे पेट की बीमारी ठीक हो जाने पर तुम्हें आशीर्वाद दूँगी।'' तो, माँ की बीमारी ठीक होने पर उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया था।

एक दिन माँ खाने बैठीं। खाते-खाते अपने मुख से लारयुक्त प्रसाद को निकालकर मुझे देते हुए बोलीं – ''देखूँ तो मेरे ऊपर तुम्हारी कैसी भक्ति है !'' मैंने वह प्रसाद खा लिया।

माँ की पेट की बीमारी के समय मैं जूट के बोरे के ऊपर माँ को शौच (मलत्याग) करवाती थी। नारायण (नारायण) पाल इस अँचल के नामी (प्रसिद्ध) चिकित्सक थे। वे आकर माँ का उपचार कर गए थे। डॉक्टर को दिखाने के लिए माँ के मल को रखना होता था। डॉक्टर लकड़ी की तील से मल को दिखाने को कहते थे। मैंने सोचा कि सम्भवत: माँ को दुख होगा। इसीलिए मैं उँगली से हिला-डुलाकर मल दिखाती थी।

मैं – आप क्या दक्षिणेश्वर में थीं?

वृद्धा माँ – (अद्‌भुत हँसी के साथ) हाँ।

मैं – इस समय आपके घर में कौन है?

वृद्धा माँ – बेटी का विवाह कर दिया था। माँ ने कहा कि बीस वर्ष की आयु के बाद बेटी जीवित नहीं रहेगी। वही हुआ। बेटी के मर जाने पर फिर से दामाद का विवाह कराकर उन्हें घर पर ही रखी हूँ। नई बहू और दामाद मेरी अच्छी तरह देख-रेख करते हैं। थोड़ी रात होते ही दामाद लालटेन लेकर खोजने के लिये आते हैं।

एक दिन माँ बोलीं – 'आँखें बन्द करके इष्ट मन्त्र-जप करो तो ! मेरे द्वारा आँखें खोलने को कहने पर आँखें खोलना।'' माँ भी पास बैठी थीं (सम्भवत: यह घटना ठाकुर-मंदिर में घटी थी।) कुछ देर बाद माँ ने आँखें खोलने को कहा। मुझे ठाकुर का दर्शन मिला। माँ बोलीं – ''तुम जो क्रन्दन कर रही थी, ठाकुर का दर्शन पायी तो?''

मैं – (आपने) कैसा दर्शन पाया था?

वृद्धा माँ – ठाकुर को देखा था, बाबा ! मुझे कोई दुख, भय कुछ भी नहीं है, कोई कष्ट भी नहीं है। एक दिन रात में छिमा (श्रीमाँ) से कहा था, ''माँ अब तुम खींच लो और अधिक देर क्यों?'' माँ बोलीं – ''मेरी क्या सामर्थ्य? तुम्हारा अभी (प्रारब्ध) समाप्त नहीं हुआ।''

मैं – ऐसा आदेश आपने कैसे पाया?

वृद्धा माँ – स्वप्न में। स्वप्न में माँ के साथ बातें हुईं थीं।

इस तरह विविध वार्तालाप करते-करते वृद्धा माँ को घर पहुँचाया। उन्होंने मुझे बैठने हेतु एक स्टूल दिया। वे बारम्बार खेद प्रकट करने लगीं – ''बाबा, यदि पहले से जानती, तो तुम्हारे लिए कुछ प्रसाद लेकर आती। मेरे पास पैसा रहने पर मिठाई खरीदकर लाती। बड़ा दुख हुआ, बाबा !

तब वृद्धा माँ फिर से आश्रम आने के लिए मेरे साथ पैदल चलने लगीं। उनके घर के द्वार पर मैंने उनके चरणों पर मस्तक से स्पर्श करके प्रणाम किया।

वृद्धा माँ – अहा ! बाबा, यह क्या करते हो? ब्राह्मण के लड़के हो।

मैं – नहीं, माँ मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। आप आशीर्वाद दीजिए, जिससे ठाकुर-माँ के प्रति मेरी भक्ति-प्रीति हो। आपने कितने दिनों माँ की सेवा की है !

वृद्धा माँ – (थोड़ा गम्भीर होकर) विवाह हुआ है?

मैं – नहीं। मेरी आयु २१-२२ वर्ष है। मैं आश्रम में ही रहता हूँ।

वृद्धा माँ – बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। तो श्रीमाँ-ठाकुर की ओर मन लगाओ।

मैं – आप आशीर्वाद दीजिए जिससे ठाकुर-माँ के प्रति मेरी भक्ति हो।

वृद्धा माँ – होगी, खूब होगी। किन्तु रोदन-क्रन्दन करना होगा। (उनके घर के बाहर खड़े होकर ये सब बातें हुईं।) छिमा (श्रीमाँ) ने कहा था – ''तू मेरी सेवा करती हो, कल कितने ही लोग तुम्हें प्रणाम करेंगे, भक्ति करेंगे।'' वही हुआ। किरण बाबू कितनी भक्ति करते हैं, 'बूढ़ी माँ, बूढ़ी माँ कहते हुए। कितने ही लोग दो आना, चार आना, एक रुपया, दो रुपया देते हैं। कपड़े तो मुझे खरीदने नहीं पड़ते। कितने लोग देते हैं, उससे ही काम चल जाता है।' **(क्रमश:)**

प्रतिदिन ध्यान करना चाहिए। ध्यान करने का बहुत सुन्दर समय है सुबह। ध्यान से पहले थोड़ा शास्त्रपाठ करने से मन सहज ही एकाग्र हो जाता है। ध्यान के बाद कम से कम आधा घण्टा चुपचाप बैठना जरूरी है, क्योंकि ध्यान करने के समय effect **(प्रभाव) नहीं भी हो सकता है; वह कुछ बाद में भी हो सकता है। इसलिए ध्यान के तुरन्त बाद मन को किसी सांसारिक अथवा व्यर्थ के विषय में नहीं लगाना चाहिए। उससे बहुत हानि होती है।**

पहले पहल जप-ध्यान का अभ्यास करने की बहुत आवश्यकता है। यदि अच्छा न भी लगे, तो भी नित्य अभ्यास करना होगा। केवस अभ्यास से बहुत काम बन जाता है। प्रतिदिन कम-से-कम दो घण्टे जप करना चाहिए। किसी निर्जन बगीचे में, या नदी के किनारे, या बड़े मैदान में अथवा स्वयं के कमरे में चुप बैठे रहने से भी बहुत समय काम बन जाता है। पहले पहल एक routine **बनाकर काम करना उचित है। ऐसे किसी भी काम का भार लेना अच्छा नहीं, जिससे** routine **टूट जाये।**

– स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

और पत्थर तैरने लगा

सन्तोष मालवीय, 'प्रेमी'

रामायण युग में लंका जाने के लिये पत्थरों पर 'राम' नाम अंकित कर समुद्र में डाले गए, तो प्रभु के प्रताप से वे सभी पत्थर तैरने लगे। जब-जब सत्य की, धर्म की परीक्षा ली जायेगी, तब-तब पत्थर तैरने लगेगें, चाहे कोई भी युग क्यों न हो।

एक बार की बात है। एक धनिक ने अपनी शक्ति और प्राणपण से प्रयत्न करके बड़ी श्रद्धा के साथ सम्पूर्ण प्राणियों के उपकार के लिए कल्याणमय जलाशय बनवाया। जलाशय-निर्माण कार्य में उसने दस सहस्त्र मुद्राएँ खर्च की। अपनी समस्त संचित निधि व्यय हो जाने के कारण वह धनिक कुछ ही काल में निर्धन हो गया।

कालान्तर में एक अन्य धनिक ने उस जलाशय के स्वामी से कहा – ''भाई, तुम बहुत काल से जलाशय-निर्माण का पुण्य प्राप्त करते आ रहे हो ... अब निर्धन हो गए हो। अत: मैं तुम्हें जलाशय-निर्माण में व्यय की गई मुद्राएँ तुम्हें देता हूँ ... मुझे इस जलाशय का स्वामित्व प्रदान कर दो। यदि तुम्हें उचित जान पड़े, तो मेरा प्रस्ताव स्वीकार करो।''

धनिक ने कहा – ''जलाशय-निर्माण का पुण्य लाभ तो मैं प्रतिदिन प्राप्त कर ही रहा हूँ, परन्तु तुम्हारा प्रस्ताव उचित प्रतीत नहीं होता है, तुम चाहो, तो धर्मपूर्वक इस पुण्य-कर्म की परीक्षा ले सकते हो।''

धनिक के वे वचन सुनकर वहाँ उपस्थित लोग उसका उपहास कर उसे लज्जित करने लगे। तब दूसरे धनिक ने कहा – मैं तुम्हें दस सहस्त्र स्वर्ण मुद्राएँ देता हूँ तथा एक शिलाखण्ड जलाशय में डालूँगा, स्वभावत: वह शिला-खण्ड पानी में डूब जायेगा। परन्तु यदि तुम्हारे पुण्य प्रताप से वह शिलाखण्ड पानी पर तैरने लगेगा, तो मेरा दिया हुआ धन डूब जायेगा, अन्यथा जलाशय पर धर्मत: मेरा अधिकार होगा।''

जलाशय-निर्माण करानेवाले धनिक को परीक्षा पसन्द आ गई। उसने शर्त स्वीकार कर दस सहस्त्र स्वर्ण मुद्राएँ ले लीं। तब अनेक लोगों के समक्ष एक बड़ा-सा पत्थर जलाशय में डाल दिया गया। इस अनोखी परीक्षा के दर्शक मनुष्यों के साथ-साथ देवतागण भी बने।

जलाशय के जल पर क्या पत्थर तैर सकता है? इस अनोखी परीक्षा की जानकारी जैसे-जैसे लोगों को मिलती गई, लोग जलाशय के किनारे एकत्रित होते गए। सभी श्रद्धालु भजन-कीर्तन करने लगे।

दोनों धनिक के पक्षधर लोग वहाँ उपस्थित थे। कहते हैं, ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, वह पत्थर पानी पर तैरता हुआ धीरे-धीरे जल की सतह से ऊपर उठता गया। कुछ ही समय में वह पत्थर जल की सतह पर तैरने लगा, जिसे देखकर सबने सत्य और धर्म की विजय स्वीकार की। शर्त के अनुसार दूसरा धनिक स्वर्ण मुद्राएँ हार चुका था।

व्यापार-व्यवसाय में लगाए गए धन पर लाभ-हानि का मूल्यांकन किया जा सकता है, परन्तु धर्मार्थ लगाए गए धन में पुण्य-लाभ जुड़ जाने के कारण वह धन सहस्त्रगुणा हो जाता है, जिसका मूल्यांकन सम्भव नहीं है। ○○○

हम तो उसी सर्व शक्तिमान परम पिता की सन्तान हैं, उसी अनन्त ब्रह्माग्नि की चिनगारियाँ है – भला हम 'कुछ नहीं' क्यों हो सकते हैं? हम सब कुछ हैं, हम सब कुछ कर सकते हैं और मनुष्य को सब कुछ करना ही होगा।... अतएव, भाइयों ! तुम अपनी सन्तानों को उसके जन्म-काल से ही इस महान, जीवनप्रद, उच्च और उदात्त तत्त्व की शिक्षा देना शुरु कर दो।... आत्मा की पूर्णता के इस अपूर्व सिद्धान्त को सभी सम्प्रदायवाले समान रूप से मानते हैं।

आत्मविश्वास का आदर्श ही हमारी सबसे अधिक सहायता कर सकता है। यदि इस आत्मविश्वास का और भी विस्तृत रूप से प्रचार होता और यह कार्यरूप में परिणत हो जाता, तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि जगत् में जितना दुख और अशुभ है, उसका अधिकांश गायब हो जाता।

– स्वामी विवेकानन्द

गीतातत्त्व-चिन्तन (८)

दशम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १०वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्।।२७।।

अश्वानाम् (घोड़ों में) अमृतोद्भवम् उच्चैःश्रवसम् (अमृत के साथ उत्पन्न उच्चैःश्रवा) गजेन्द्राणाम् ऐरावतम् (हाथियों में ऐरावत) च नराणाम् नराधिपम् (और मनुष्यों में राजा) माम् विद्धि (मुझको जान)।

''घोड़ों में अमृत के साथ उत्पन्न उच्चैःश्रवा घोड़ा, हाथियों में ऐरावत और मनुष्यों में मुझको राजा जान।''

भगवान कहते हैं कि किसी-किसी को घोड़ों पर बड़ी आसक्ति होती है। बम्बई में घुड़दौड़ में जाकर यह दृश्य देखा जा सकता है। लोग उन घोड़ों की छबि को भी अपने कमरे में टाँगकर रखते हैं। भिन्न-भिन्न घोड़ों की तस्वीर को लगा रखते हैं, जिन पर वे पैसा लगाते हैं, जिनको वे प्यार करते हैं। जो घोड़ा जिता दे, तो वह तो उनके लिए देवता हो जाता है। उसकी तो वे पूजा भी कर दें, आरती करने से भी नहीं चूकेंगे। तो यदि किसी की घोड़े में ही रुचि है, तो

वह उच्चैःश्रवा घोड़े का चिन्तन कर ले। यह घोड़ा इन्द्र का है। यह कैसे उत्पन्न हुआ था, यह तो आप जानते ही होंगे। यह समुद्र-मन्थन के समय उत्पन्न हुआ था। मन्थन के समय यह घोड़ा और ऐरावत हाथी आदि विभिन्न वस्तुएँ निकलकर आई थीं, जैसे लक्ष्मी, गरल आदि। सब लोगों ने अपना-अपना हिस्सा खींच लिया। देवता भी तो बड़े स्वार्थी होते हैं न। लक्ष्मी को देवताओं ने हड़पना चाहा, तो विष्णु लक्ष्मी को लेकर भागे। जब हलाहल निकला, तो सब घबराए और फिर शिवजी ने उस विष से सबको मुक्त किया। उसका पान करके, उसे गले में अटका लिया और नीलकण्ठ कहलाए। वह अवान्तर कथा है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि यदि हाथी में रुचि हो, तो मैं ऐरावत में विभूतिरूप से विद्यमान हूँ। यह हाथी भी मन्थन में निकला था, जो इरावती का पुत्र था। श्रीकृष्ण फिर कहते हैं –

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः।।२८।।

अहम् (मैं) आयुधानाम् वज्रम् (शस्त्रों में वज्र) धेनूनाम् कामधुक् अस्मि (गौओं में कामधेनु हूँ) प्रजनः कन्दर्पः अस्मि (प्रजनन करनेवालों में कामदेव हूँ) च सर्पाणाम् (और सर्पों में) वासुकिः अस्मि (वासुकि हूँ)।

''मैं शस्त्रों में वज्र, गौओं में कामधेनु हूँ, प्रजनन करनेवालों में कामदेव और सर्पों में वासुकि हूँ।''

कई लोग शस्त्रों की पूजा करते हैं। तो प्रभु का कहना है कि वज्र के समान शस्त्र और क्या हो सकता है। वज्र ऐसा शस्त्र है, जो सबका नाश कर देता है। जो वीर होते हैं, वे अपने शस्त्रों से अत्यधिक स्नेह रखते हैं। उन शस्त्रों को माँजते हैं, परिष्कार करते हैं। धेनूनामस्मि कामधुक् – और गउओं में किसी का मन रमा हुआ है, तो कामधेनु का चिन्तन करना ही श्रेयस्कर होगा। यह ऐसी धेनु है, जो अद्भुत दूध देनेवाली है और साथ-ही-साथ कामनाओं की पूर्ति करनेवाली भी है। कामधेनु के सम्बन्ध में एक बहुत सुन्दर पौराणिक कथा आती है। उस प्रसंग का यहाँ प्रयोजन नहीं है। प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः – मनुष्यों में काम-भावना बड़ी प्रबल रहती है। संसार में काम भावना से

ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है। हम यह सर्वत्र देखते ही हैं। नर-मादा एक साथ जुड़ने के लिए, संयुक्त होने के लिए, भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। तो भगवान उसको भी चिन्तन का विषय बनाते हैं। मानो वे उस काम का भी परिष्करण, उदात्तीकरण कर रहे हैं। अँग्रेजी में sublimation शब्द आता है। बाहर के मनोवैज्ञानिक जैसे फ्राइड हैं, वे इस sublimation में विश्वास नहीं करते हैं। वे कहते हैं कि कामभाव का sublimation कभी हो ही नहीं सकता। मनुष्य अपने जीवन में धर्म इत्यादि को लाने की कोशिश करता है, वह प्रच्छन्न काम है। यह फ्राइड का कहना है। जो व्यक्ति धर्म की ओर जाता है, वस्तुत: उसका कामभाव ही उसे उस तरफ ले जाता है। मानो धर्म के पीछे भी उसका काम निहित है, यौन भावना निहित है। ऐसी ही धारणा बाहर के मनोवैज्ञानिकों की है। विशेषकर फ्राइड की धारणा ऐसी ही है। उनकी यह दृढ़ धारणा है कि काम भावना को कभी भी उदात्त किया ही नहीं जा सकता। काम-भावना कभी परिष्कृत हो नहीं सकती। उनके अनुसार sublimation केवल वाणी का छल है। पर हमारे यहाँ बात भिन्न है। हम काम के उदात्तीकरण में विश्वास करते हैं। हम लोग काम की शक्ति को धर्म की शक्ति के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। उसे उदात्त कर देते हैं। योगाभ्यास के द्वारा हम लोग कुण्डलिनी का जागरण करते हैं। यह जागरण कैसे? जब तक मनुष्य साधारण कामभाव से पीड़ित है, तब तक उसकी कुण्डलिनी जागरण कभी भी नहीं होगी। नीचे स्वाधिष्ठान है, जहाँ कामभाव विद्यमान रहता है। उसके नीचे में सारी शक्ति सुप्त है। वहीं से कुण्डलिनी का आरम्भ होता है। हमारे शास्त्रों का ऐसा मानना है कि जब तक मनुष्य काम भावना में रुचि लेता है, तब तक कुण्डलिनी शक्ति सुप्त रहेगी। कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के लिए कामभावना को धर्मभावना में परिणत करना पड़ता है। जैसे ही कामभावना धर्मभावना में बदलती है और हम वहाँ पर कुण्डलिनी के अधिष्ठान पर मानसिक रूप से धीरे-धीरे आघात करते जाते हैं, तब इस कुण्डलिनी शक्ति का जागरण सम्भव होता है। यह बड़ी कठिन और सूक्ष्म साधना होती है। जो योग के अभ्यासी होते हैं और अष्टांग योग के माध्यम से इस आत्मतत्त्व का दर्शन करना चाहते हैं, उनके लिए सतत गुरु के साथ रहने का प्रावधान किया गया है। ऊल-जलूल साधना करने से, यथार्थ गुरु के अभाव में साधना करने से, उस साधक का मस्तिष्क ही विकृत हो जाता है, पागल हो जाता है। पथ-प्रदर्शक के न मिलने से, कहीं किसी किताब में पढ़कर ऐसी विकट साधना में प्रवृत्त होने का परिणाम बड़ा ही घातक होता है। भगवान का यहाँ कथन है कि प्रजनन तो बिना कामभाव के हो ही नहीं सकता। इस प्रजनन को भी उदात्त बना देते हैं और कहते हैं कि इस सन्दर्भ में यदि मेरा रूप देखना है, तो मैं कन्दर्प हूँ। कन्दर्प अर्थात् कामदेव। यह बड़ी अद्‌भुत बात है। हिन्दुधर्म की जो साधना है, यह बड़ी मनोवैज्ञानिक है। यही इसकी उदात्तता है। कहने का मतलब जो निकृष्ट है, उसी को धो-पोंछकर एक सुन्दर संस्कारित वस्तु कर देते हैं। कामभावना जिसको हम अत्यन्त हीन मानते हैं, इसे हिन्दू धर्म ने कभी हीन नहीं माना। (७वें अध्याय के ११वें श्लोक) में भगवान ने कहा है – धर्माऽविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ – जो धर्म का अविरोधी भाव काम मनुष्य में है, जिससे प्रजनन होता है, सन्तानोत्पत्ति जिस काम को स्वीकार करता है, अर्जुन, वह मैं ही हूँ। भगवान का यही मत है कि किसी भी वस्तु की तुच्छता को दिव्यता किस तरह प्रदान की जाए। इसीलिए काम को रोग या ज्वर कहा गया है। इस रोग का हम आह्वान करते हैं। वह नहीं रहता है, तो हम उसका चिन्तन कर उसे जागृत कर देते हैं और फिर त्रस्त होते हैं। रोग को पैदा करते हैं और फिर उसको दूर करने के लिए दवाई लेते हैं। फिर कहते हैं कि दवाई ली, तो रोग ठीक हो गया। तो फिर स्वास्थ्य की निशानी क्या है? अरे भाई, हमेशा नीरोग रहो, रोग उत्पन्न ही न हो, यह भले स्वास्थ्य की पहचान है। वही अच्छी स्थिति है कि भगवान की कृपा से रोग ही न हो। हमें दवाई खाने की स्थिति ही न आए। तो मनुष्य रोग को उत्पन्न करता है, इसीलिए उसको तुच्छ नहीं मानना चाहिए। मनुष्य अपने जीवन में इस कामज्वर को उत्पन्न करता है, विचार करके, भिन्न-भिन्न उपाय करके और जब रोग उत्पन्न होता है, तब उसका उपशमन करने के लिए विभिन्न उपाय करेगा। भगवान का कथन है कि इतनी बड़ी शक्ति जो जगत में सबके भीतर भिदी हुई है। मैं कन्दर्प के रूप में हूँ और उस रूप में मेरा चिन्तन किया जा सकता है। धीरे-धीरे यह ज्वर समाप्त हो जाता है और मुझे देखने के लिए एक क्षमता प्राप्त हो जाती है। शनै:-शनै: जीव, यह साधक मेरी ओर आता है। फिर भगवान ने कहा – सर्पाणास्मि वासुकि: – सर्प जाति में मैं उसका राजा वासुकि हूँ। प्रभु ने कहा कि सर्प जाति

को नगण्य मत समझ।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्।।२९।।

अहम् (मैं) नागानाम् अनन्तः (नागों में शेषनाग) च यादसाम् वरुणः अस्मि (और जलचरों में वरुण हूँ) पितॄणाम् अर्यमा (पितरों में अर्यमा) अहम् संयमताम् यमः अस्मि (मैं संयमी लोगों में यमराज हूँ)।

– ''मैं नागों में शेषनाग, जलचरों में वरुण हूँ, पितरों में अर्यमा और संयमी लोगों में मैं यमराज हूँ।''

– अर्जुन को तो नागकन्या से विवाह करना पड़ा, तो यह जाति तुच्छ कहाँ हुई? आप लोग तो जानते हैं, समुद्र-मन्थन में वासुकि को रस्सी के रूप में उपयोग में लाया गया और सुमेरु को मथानी बनाया गया। पौराणिक कथाएँ बड़ी प्रतीकात्मक हुआ करती हैं। ऐसा वासुकि जिसने अपने आपको मथानी बनना स्वीकार किया। जरा सोचकर देखिए कि इस तरह मथानी बनाने में घर्षण नहीं हुआ होगा। रस्सी क्या क्षीण नहीं होती। जगत् के कल्याण के लिए उसने यह त्याग तो किया। तो प्रभु ने कहा कि सर्पों में मैं वासुकि हूँ। किसी ने कहा कि सर्प और नाग में भेद क्या है? कुछ व्याख्याकारों ने ऐसा माना है कि सर्प का एक ही मुँह होता है जबकि नाग के अनेक मुँह होते हैं। किसी ने कहा कि जो हमेशा चलता रहता है, वह साँप है और जो कुण्डली मारकर बैठा रहता है, वह नाग है। पर हम सर्प को एक जाति के रूप में लेते हैं। यह मनुष्यों की तरह एक जाति है। नागों का राजा अनन्त है और सर्पों का वासुकि। हे अर्जुन, तू मेरी विभूतियों का इन रूपों में चिन्तन कर सकता है। वासुकि को देखो। उसने अपने जीवन को होम कर दिया। **वरुणो यादसामहम्** – यादसाम् अर्थात् जल-सम्बन्धी देवता। जिनका हर वक्त जल से ही पाला पड़ता है, उन्हें मैंने स्वयं बम्बई में देखा है कि मछुआरे समुद्र में घुसने के पूर्व समुद्र को बड़े भक्तिभाव से प्रणाम करते हैं, मानो कह रहे हैं तुम हमारी नाव भले ही उलटा दो, पर कभी उसे डुबाना मत। तो इन जल देवताओं में भगवान की विभूति वरुण के रूप में है। वरुण ही जल के प्रदाता हैं। वरुण वृष्टि करते हैं। इस प्रकार जो जल के उपासक हों, वे मेरी विभूति वरुण पर ध्यान केन्द्रित करें। वरुण की उपासना करके तुम मेरे पास ही आओगे। **पितॄणाम् अर्यमा चास्मि** – जो पितर लोग होते हैं न, जिनकी हम लोग पितृमोक्ष अमावस्या के दिन पूजा-अर्चा कर भोगादि भी चढ़ाते हैं। पितरों में अब कोई अर्यमा नाम के हो गये होंगे। पौराणिक कथाओं में एक प्रसंग आता है, जिसमें इन अर्यमा नाम के पितर की चर्चा हुई है। फिर **यमः संयमतामहम्** - किसी-किसी को संयम से विशेष लगाव होता है। इन्द्रिय-निग्रह के प्रशंसक होते हैं और अपने जीवन में उसे आचरण भी करते हैं। जो प्रलोभनों से दूर रहता है, ऐसे संयमी व्यक्ति की सर्वत्र प्रशंसा भी होती है। इन समस्त संयमी लोगों में यदि मेरी विभूति देखना चाहो, तो मैं यम के रूप में विद्यमान हूँ। मेरा प्रकाश उसके भीतर देखोगे, तो तुम आदमी में फँसोगे नहीं। कई बार ऐसा होता है, कोई किसी बड़े संयमी साधक की ओर आकृष्ट होता है और अनेक रूपों में उसके जीवन से प्रभावित भी होता है। पर जब वह व्यक्ति उस साधक के अत्यन्त नजदीक आता है, तो उसे उसमें अनेक दोष देखने को मिलते हैं, क्योंकि मनुष्य में दोष का रहना स्वाभाविक भी है। इस तरह मन खिन्न हो जाता है और जो लाभ उसे उस साधक से मिल रहा था, वह बन्द हो जाता है। तो यहाँ प्रभु का कहना है कि सभी संयमियों में मैं यम हूँ। प्रभु का कहना है कि उस संयमी के भीतर में जो संयम है, उसकी उपासना क्यों नहीं करते। वह संयम कौन है? प्रभु कहते हैं कि वे ही संयम हैं। यह मेरी विभूति है। व्यक्ति के भीतर जो गुण या प्रकाश दिखाई देता है, प्रभु का कहना है कि वह प्रकाश मैं ही हूँ और उस प्रकाश को ही ग्रहण करना श्रेयस्कर है। प्रभु का कहना यह है कि व्यक्ति-पूजा से ऊपर उठकर तुम अन्ततः मेरी ही शरण में आओ, क्योंकि वही तुम्हारा शाश्वत स्थान है। यहाँ इस अध्याय में श्रीकृष्ण ने यह बताया है कि विभूतियों द्वारा भगवान का चिन्तन किस प्रकार हो।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।३०।।

अहम् दैत्यानाम् (मैं दैत्यों में) प्रह्लादः (प्रह्लाद) च कलयताम् कालः (और गणकों में समय) अस्मि (हूँ) च मृगाणाम् मृगेन्द्रः (और पशुओं में सिंह) च पक्षिणाम् वैनतेयः (और पक्षियों में गरुड़) अहम् (मैं हूँ)।

''मैं दैत्यों में प्रह्लाद और गणकों में समय हूँ तथा पशुओं में सिंह और पक्षियों में गरुड़ हूँ।''

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी।।३१।।

अहम् पवताम् (मैं पवित्र करनेवालों में) पवनः (पवन) शस्त्रभृताम् रामः अस्मि (शस्त्रधारियों में राम हूँ) झषाणाम् मकरः अस्मि (मछलियों में मगर हूँ) च स्रोतसाम् जाह्नवी अस्मि (और जलस्रोतों में भागीरथी हूँ)।

''मैं पवित्र करनेवालों में पवन, शस्त्रधारियों में राम हूँ, मछलियों में मगर हूँ और जलस्रोतों में भागीरथी हूँ।''

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्।।३२।।

अर्जुन (हे अर्जुन!) अहम् (मैं) सर्गाणाम् (कल्पों में) आदिः च अन्तः च मध्यम् (आदि, अन्त और मध्य हूँ) विद्यानाम् अध्यात्मविद्या (विद्याओं में अध्यात्मविद्या) प्रवदताम् वादः (तर्कों में विवाद हूँ)।

''हे अर्जुन ! मैं कल्पों में आदि, अन्त और मध्य हूँ, मैं विद्याओं में अध्यात्मविद्या और तर्कों में विवाद हूँ।''

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।।३३।।

अहम् अक्षराणाम् अकारः (मैं अक्षरों में अकार) च सामासिकस्य द्वन्द्वः अस्मि (और समासों में द्वन्द्व समास हूँ) अक्षयः कालः (अक्षय काल) विश्वतोमुखः (सर्वत्रमुखवाला) धाता अहम् एव (पोषण करने वाला भी मैं ही हूँ)।

''मैं अक्षरों में अकार हूँ और समासों में द्वन्द्व समास हूँ, अक्षय काल सर्वत्रमुखवाला और सबका पोषण करनेवाला भी मैं ही हूँ।''

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।।३४।।

अहम् सर्वहरः मृत्युः (मैं सर्वनाशकारी मृत्यु) च भविष्यताम् (और जीवन का) उद्भवः (कारण हूँ) नारीणाम् (स्त्रियों में) कीर्तिः श्रीः वाक् स्मृतिः मेधा धृतिः च क्षमा (कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ)।

''मैं सर्वनाशकारी मृत्यु और जीवन का कारण हूँ, स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ।''

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः।।३५।।

अहम् (मैं) बृहत्साम् साम्नाम् (श्रुतियों में बृहत्साम) तथा गायत्री छन्दसाम् (छन्दों में गायत्री हूँ) मासानाम् मार्गशीर्षः (महीनों में मार्गशीर्ष) ऋतूनाम् कुसुमाकरः (ऋतुओं में बसन्त हूँ)।

''मैं श्रुतियों में बृहत्साम और छन्दों में गायत्री हूँ तथा महीनों में मार्गशीर्ष और ऋतुओं में बसन्त हूँ।''

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्।।३६।।

अहम् छलयताम् द्यूतम् (मैं छल में द्यूत) तेजस्विनाम् तेजः अस्मि (तेजस्वियों का तेज हूँ) जयः अस्मि (जीतनेवालों में विजय हूँ) व्यवसायः अस्मि (व्यवसायिओं का व्यवसाय हूँ) सत्त्ववताम् सत्त्वम् अस्मि (सात्त्विक पुरुषों का सत्त्व हूँ)।

''मैं छल में द्यूत और तेजस्वियों में तेज हूँ, मैं (जीतनेवालों) में विजय हूँ (व्यवसायिओं) का व्यवसाय, सात्विक पुरुषों का सत्त्व हूँ।''

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।।३७।।

वृष्णीनाम् वासुदेवः (वृष्णियों में वासुदेव) पाण्डवानाम् धनञ्जयः (पाण्डवों में धनञ्जय) मुनीनाम् व्यासः (मुनियों में वेदव्यास) कवीनाम् उशना कविः (कवियों में शुक्राचार्य) अपि अहम् अस्मि (मैं ही हूँ)।

''वृष्णियों में वासुदेव, पाण्डवों में धनञ्जय, मुनियों में वेदव्यास, कवियों में शुक्राचार्य भी मैं ही हूँ।''

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।।३८।।

दमयताम् दण्डः अस्मि (दमन करनेवालों में दण्ड हूँ) जिगीषताम् नीतिः अस्मि (जीतनेवालों में नीति हूँ) गुह्यानाम् मौनम् अस्मि (गुप्तभाव में मौन हूँ) च ज्ञानवताम् ज्ञानम् अहम् एव (और ज्ञानियों का तत्त्वज्ञान भी मैं ही हूँ)।

''दमन करनेवालों में दण्ड हूँ, जीतनेवालों में नीति हूँ, गुप्तभाव में मौन हूँ और ज्ञानियों का तत्त्वज्ञान भी मैं ही हूँ।''

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।।३९।।।

अर्जुन (हे अर्जुन !) यत् सर्वभूतानां बीजम् (जो सब प्राणियों का बीज है) तत् अपि अहम् (वह भी मैं हूँ) च तत् चराचरम् भूतम् (और कोई चराचर प्राणी) न अस्ति (नहीं है) यत् मया बिना स्यात् (जो मुझसे रहित हो)।

''हे अर्जुन ! जो सब प्राणियों का बीज है, वह भी मैं हूँ और कोई चराचर प्राणी नहीं है, जो मुझसे रहित हो।''

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया।।४०।।

परन्तप (हे अर्जुन !) मम दिव्यानाम् विभूतिनाम् (मेरी दिव्य विभूतियों का) अन्तः न अस्ति (अन्त नहीं है) मया विभूतेः एषः विस्तरः (मैंने विभूतियों का यह विस्तार) तु उद्देशतः प्रोक्तः (तो तेरे लिए संक्षेप से कहा है)।

''हे अर्जुन ! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है, मैंने विभूतियों का यह विस्तार तो तेरे लिए संक्षेप से कहा है।''

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।।४१।।

यत् यत् एव (जो जो भी) विभूतिमत् श्रीमत् वा ऊर्जितम् सत्त्वम् (विभूतियुक्त कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है) तत् तत् त्वम् (उस उस को तू) मम तेजोंऽश (मेरे तेज अंश से) सम्भवम् एव अवगच्छ (ही उत्पन्न जान)।

''जो जो भी विभूतियुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उस को तू मेरे तेज अंश से ही उत्पन्न जान।''

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।।४२।।

अर्जुन (हे अर्जुन !) अथवा एतेन बहुना ज्ञातेन (अथवा इस बहुत जानने से) तव किम् (तेरा क्या प्रयोजन) अहम् इदम् कृत्स्नम् जगत् (मैं इस सम्पूर्ण जगत को) एकांशेन विष्टभ्य स्थितः (अपने एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ)।

''हे अर्जुन ! अथवा इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन मैं इस सम्पूर्ण जगत को अपने एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ।'' ***दशवाँ अध्याय समाप्त*** **(क्रमशः)**

सदैव ईश-भाव

स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज (३ जनवरी, १८६३ – २१ जुलाई, १९२२) का जीवन त्याग, तपस्या, वैराग्य, साधन-भजन का ज्वलन्त उदाहरण है। वे अपने जीवन में सामान्य से सामान्य घटना से भी ईश्वर की उद्दीपना करा देते थे। वैसी ही एक सामान्य घटना इस प्रकार है।

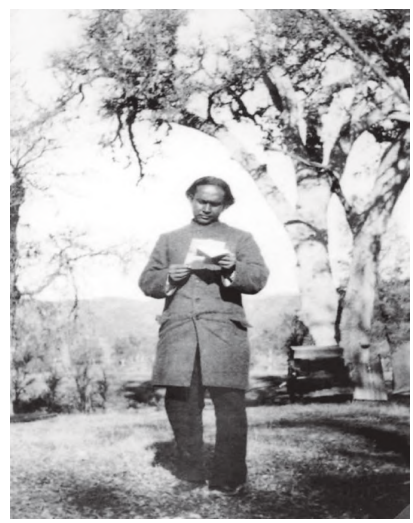
स्वामी तुरीयानन्द जी (हरि महाराज)

अमेरिका में रहते समय स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज गुरुदास महाराज (स्वामी अतुलानन्द) के साथ एक छोटे-से शाकाहारी भोजनालय में जाते थे। वहाँ बहुत कम लोगों का आना-जाना होता था। इस कारण भोजन के बाद भी उनकी बातचीत स्वाधीनतापूर्वक चलती रहती थी। उस भोजनालय को चलाने का भार एक तरुणी पर था। जो थोड़े-बहुत लोग वहाँ आते, वही उनका सत्कार किया करती। वह तरुणी प्रसन्नचित्त, सरल तथा नम्र स्वभाव की थी और स्वामी तुरीयानन्द उसे बहुत पसन्द करते थे। एक बार स्वामी तुरीयानन्द जी ने उससे पूछा, ''तुम्हारा नाम क्या है?'' उसने उत्तर दिया, ''मेरा नाम मेरी है?'' महाराज ने कहा, ''अहा ! तुम्हारा नाम कितना मधुर और सार्थक है ! मेरी ईसा मसीह की माता थीं।'' तरुणी ने अत्यन्त आनन्दित होकर कहा, ''अद्भुत बात है स्वामीजी! मैंने अपने नाम के इस अर्थ पर कभी विचार नहीं किया था। इस अर्थ ने मेरे मन को एक दिव्य संयोगसूत्र से जोड़ दिया है। आपने कृपा करके मुझे इसका स्मरण करा दिया।'' स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज ने कहा, ''हाँ, अब से मैं सर्वदा तुम्हें ईसा मसीह की माँ ही समझूँगा। इस विषय में तुम निश्चिन्त रहो। मैं ईसा की भक्ति करता हूँ। वे भी एक संन्यासी थे और उन्होंने दूसरों के लिए प्राणदान कर दिया था।'' थोड़ी-सी बातचीत से ही तरुणी महाराज के प्रति भक्तिपरायण हो गयी। उनके दुकान में आते ही वह बड़ी प्रसन्न हो जाती। ○○○

लक्ष्य अवश्य मिलेगा

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छत्तीसगढ़)

हमारा मन अजीब चीज है। उसे न देख सकते हैं, न सुन सकते हैं। केवल अनुभव कर सकते हैं। जीवन ही एक तमाशा है। हमारा शरीर बूढ़ा होता है, लेकिन राग, द्वेष, तिरस्कार, षट्रिपु मन में वैसे के वैसे ही रहते हैं। इनके कारण हम बहुत कष्ट पाते हैं। यदि मनुष्य जन्म मिला है, तो ऐसा कर्म करें कि हमें संसार में फिर से न आना पड़े। वेदान्त को जानने से मनुष्य सब कुछ जान लेता है और बहुत आनन्द में रहता है। आनन्द न वस्तु पर निर्भर है, न व्यक्ति पर, वह तो हमेशा बना रहता है। हमारे ऋषि-मुनियों ने कहा है कि तुम कौन हो? हम आत्मा हैं, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हैं। ऐसा सोचने से हम किसी की हानि नहीं कर सकते, किसी को दुःख नहीं दे सकते। भगवान द्वारा दिये गए मनुष्य जन्म को नष्ट मत करो, उसका सदुपयोग करो। हमें ये जानना चाहिए कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है?

हमें सत्कर्म में विश्वास करना पड़ेगा। जो कुछ भी हम इन्द्रियों से अनुभव करते हैं, वह अपरिवर्तनशील है। इसलिए संसार को जानने के चक्कर में मत पड़ो, अपने आपको जानो और दूसरों के लिये जीना सीखो। अपना शरीर लोक कल्याण में लगायेंगे, तो ये हजार मन्दिरों में जाने से अच्छा है। पूरे विश्व के कल्याण में हिन्दू धर्म का बड़ा दायित्व है। हिन्दू धर्म का प्राण यह है कि अच्छे मनुष्य बनो। मन और इन्द्रियों के चक्कर में मत पड़ो। अनुचित लालसा मत रखो। हमारा जीवन आवश्यकताओं के ऊपर आधारित हो, इच्छाओं पर नहीं। मृत्यु जीवन का अन्त नहीं, शरीर का अन्त है। सुख-दुख के ऊपर आनन्द का स्वरूप है, वह किसी पर निर्भर नहीं है। हमारा जन्म ही संसार का कल्याण करने के लिए हुआ है।

हम जड़ से चैतन्य को खरीदना चाहते हैं, यह कैसे होगा? जड़ तो सुख दे सकता है, आनन्द नहीं। हमारे जीवन का २४ घण्टा ऐसा बीते, जिसमें हमें यह सोचना पड़े कि अरे हमने भगवान का नाम नहीं लिया। हमेशा भगवान का नाम लें। क्योंकि हमारी आयु समाप्त हो रही है, काल क्रीड़ा कर रहा है। हमारी मृत्यु अवश्यम्भावी है, तो इसके लिए भगवान को न भुलो। भगवान हैं प्रेम के भूखे। भगवान से भगवान को ही माँग लो।

दुख हमारे लिये वरदान है। उसको हम हटा नहीं सकते। उसके लिए भगवान के पास प्रार्थना करनी है, हमारे अशुभ कर्म के कारण ही हमें दुख मिलता है। इन्द्रिय और मन से मिलनेवाला सुख अनोखा लगने लगता है। भगवान से इतना प्रेम हो जाये कि दूसरा कुछ न याद आये। इसके लिये भगवान से शरणागत हो जाओ। जो हो रहा है, सब भगवान की इच्छा से ही हो रहा है। समय हमारे हाथ में नहीं है, समय का सदुपयोग करना हमारे हाथ में है। इसके लिए हम स्वाधीन हैं।

भक्त, साधक को सांसारिक चर्चा से बचना चाहिए। मन को ऐसा प्रशिक्षित करके रखो कि वह कभी भी ईश्वर को छोड़कर वासनाओं के विषय में न सोचे। इसके लिए सतत अभ्यास करना होगा। कभी किसी की निन्दा मत करो। क्योंकि अनादि काल से ऋषि-मुनि यह कहते चले आ रहे हैं कि सर्वत्र परमात्मा व्याप्त है, तो परनिन्दा करना परमात्मा की निन्दा है, अपने भगवान की निन्दा करना है। अतः कभी भी, किसी के प्रति भी मन में बुरे विचार न लाओ। सिद्धि याने संसार को भूलना और ईश्वर का चिन्तन करना। सिद्धि भगवान के नाम-जप से मिलती है। 'मनसा वाचा कर्मणा' शुद्ध-पवित्र रहने का प्रयत्न करो। इससे आध्यात्मिक जीवन का सम्बन्ध है। बिना तन-मन-वाणी की पवित्रता के आध्यात्मिक जीवन में प्रगति नहीं की जा सकती। जो कर्त्तव्य कर्म मिला है, उसे भगवान का कार्य समझकर सच्चाई से, शुद्धता से करो। यह भगवान की सेवा है, ऐसी भावना से करो। गुरुजी ने जो साधना बतायी है, उस प्रकार साधना करो। लक्ष्य अवश्य मिलेगा। भगवान सदा हम-सबके साथ हैं। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (३८)

स्वामी बोधात्मानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

एक दिन मैंने पूछा था, ''महाराज, आप अपने जप-ध्यान का रहस्य मुझे बतायेंगे?'' उन्होंने कहा, ''देखो, मैं सन्ध्या जप-ध्यान के पूर्व विवेकचूडामणि का चार श्लोक पढ़ता हूँ और उसी से सम्पूर्ण दिन के विविध प्रकार के चिन्तन को समाप्त कर देता हूँ। विचार द्वारा मन को मायामुक्त करके जप-ध्यान आरम्भ करता हूँ। संसार अनित्य, जगत् अनित्य, अत: उसकी समस्या भी अनित्य है। मन को अनित्य दुश्चिन्ता-दुर्वासना से नहीं हटाने से जप-ध्यान में मन नहीं लगता। ठाकुर का चिन्तन करने से मन सहज में ही शान्त हो जाता है।'' उन्होंने मुझे कई बार मन-संयम के उपाय के लिए पातंजल योगसूत्र के समाधिपाद के बारहवें सूत्र – '**अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः**' के विषय में बताया था। इस सूत्र पर व्यासभाष्य है – '**वैराग्येन विषयस्रोतः खिलीक्रियते, विवेकदर्शनाभ्यासेन विवेकस्रोतः उद्घाट्यते**' – वैराग्य से विषयस्रोत मन्द होता है और विवेकदर्शन के अभ्यास द्वारा विवेकस्रोत खुल जाता है। व्यासभाष्य का 'विवेक' तथा 'वैराग्य' यह दो शब्द उन्होंने मुझे कई बार सुनाया था।

प्रशिक्षण केन्द्र में मैं केवल भव महाराज और पण्डित महाराज (ब्रह्मचारी मेधाचैतन्य) की कक्षा में जाता था। अन्यान्य विषय पर मैं परीक्षा देता था, किन्तु कक्षा में नहीं जाता था, क्योंकि मुझे छूट मिली हुई थी। भव महाराज ने मुझसे कहा, ''तुम ईश, केन, कठ, मुण्डक उपनिषदों को शंकरभाष्य, आनन्दगिरि टीका और शंकरानन्द की दीपिका के साथ कमरा में पढ़ो।'' इसके अतिरिक्त वे मुझे तथा रथीन महाराज (स्वामी ज्योतिरूपानन्द) दोनों को प्रति मंगलवार और शुक्रवार को एक घण्टा विवेकचूडामणि तथा माण्डूक्य-कारिका पढ़ाते थे। रात्रि में प्रसाद के पश्चात् रथीन महाराज और मैं पण्डित महाराज से न्याय तथा मीमांसा पढ़ते थे, यह हमारे पाठ्यक्रम में नहीं था। भव महाराज ने हमें वेदान्तसार और सांख्यकारिका पढ़ाया था। मैं वेदान्तसार का नोट लिखता था। उन्होंने पढ़कर स्वयं अपने हाथ से संशोधन कर दिया था। वह कॉपी अभी भी मेरे पास है।

भव महाराज जैसा शास्त्र का अध्यापक विरले है। वे केवल शास्त्रज्ञ पण्डित नहीं थे, बल्कि वे थे साधक संन्यासी। शास्त्र पढ़ाते समय वे दिखा देते थे कि ठाकुर और उनके पार्षदगणों ने कैसे इसको अपने जीवन में प्रतिफलित किया था। कितने आन्तरिक भाव से वे पढ़ाते थे और पाठ्यवस्तु को छात्रों के भीतर किस प्रकार प्रवेश कराया जाये; इसका कौशल वे जानते थे।

उनको मधुमेह और उच्च रक्तचाप था। एक दिन देखा, वे अस्वस्थ हैं, तब भी कक्षा के पूर्व वेदान्तसार पढ़ रहे हैं। मैंने उनकी आँखों से चश्मा निकाल लिया और कहा, ''आप चालीस वर्ष वेदान्त पढ़े हैं और पढ़ाये हैं, फिर क्यों कक्षा हेतु तैयारी कर रहे हैं?'' उन्होंने मुझसे कहा, ''तुम मेरा चश्मा वापस करो। देखो, तुमको एक बात कहता हूँ – मैं शास्त्र का शब्दार्थ जानता हूँ, फिर भी कक्षा के पूर्व उस विषय के ऊपर मनन एवं ध्यान करने पर मैं अनेक नवीन तथ्य देख पाता हूँ। उसको ही लेकर मैं कक्षा में जाता हूँ। वही सब नवीन भाव, नवीन आलोक मुझे तथा छात्रों को अनुप्राणित करता है। शिक्षक के लिए अल्प ज्ञान होना अच्छा नहीं। इससे छात्रों के सामने वह स्वयं को दीन अनुभव करता है। भविष्य में तुम कभी भी पूरी तरह तैयार नहीं होने पर वक्तृता या कक्षा लेने मत जाना।'' महाराज के उस बहुमूल्य उपदेश का अभी भी मैं पालन करता हूँ।

एक दिन उपनिषद की कक्षा में पण्डित महाराज ने कहा, ''भव महाराज शास्त्रज्ञ तपस्वी साधु हैं। वे स्वयं ही ब्रह्मलोक में जायेंगे।'' मैंने जाकर कहा, ''महाराज, आपको और जप-ध्यान नहीं करना होगा। पण्डित महाराज ने कहा है कि आप ब्रह्मलोक में जायेंगे।'' भव महाराज ने हँसकर कहा, ''पण्डित ने यह बात कही है ! अच्छा, तुम अभी जाकर पण्डित से पूछो – वह किस लोक में जायेगा?''

एक दिन वेदान्त की कक्षा में शंकराचार्य की मुक्ति और भगवान बुद्ध के निर्वाण में भिन्नता है कि नहीं, उस सम्बन्ध में बहुत चर्चा हुई। भव महाराज ने एक उदाहरण देकर तर्क को समाप्त कर दिया। उन्होंने कहा, ''एक बड़ा जहाज बन्दरगाह से समुद्र में जाने के लिए छोड़ा। उस जहाज के दो यात्री शंकराचार्य और भगवान बुद्ध हैं। जहाज जब तटभूमि को छोड़कर बीच समुद्र में चला गया, कुल-किनारा नहीं देखा जा रहा है, बुद्ध भगवान ने आकाश की ओर देखकर कहा, 'सर्वं शून्यं शून्यम्।' और शंकराचार्य ने नीचे समुद्र की ओर देखकर कहा, 'सर्वं पूर्णं पूर्णम्।' देखो, दोनों ने एक ही स्थान पर खड़े होकर एक ही अभिमत प्रकट किया। भगवान बुद्ध ने निर्वाण को शून्य के रूप में देखा और शंकराचार्य ने मुक्ति को पूर्ण रूप में देखा। बुद्ध भगवान ने नकारात्मक पक्ष को देखा तथा शंकराचार्य ने सकारात्मक पक्ष को देखा। देखो, एक आधा भरा हुआ ग्लास को कोई कहता है 'आधा खाली' और कोई कहता है 'आधा पूर्ण' कोई नकारात्मक पक्ष को देखता है तो कोई सकारात्मक पक्ष को देखता है। तुम लोग जीवन में सब समय सकारात्मक पक्ष को देखने का प्रयास करना।'' क्या ही अद्भुत युक्तिसंगत समाधान था।

भव महाराज गम्भीर साधु होने पर भी केवल शुष्क बौद्धिक संन्यासी नहीं थे। उनको वही 'घी में छना हुआ शक्कर के सिरा में डुबाया हुआ' साधु के रूप में देखा हूँ। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा, ''देखो, संन्यासीगण वैराग्यपूर्ण योगवासिष्ठ रामायण पढ़ना चाहते हैं। इसका निष्कर्ष हुआ – वशिष्ठ रामचन्द्र से कह रहे हैं, ''हे राम, तुम विवाह करके संसार करो।'' गृहस्थ भक्तिपूर्ण भागवत पढ़ना चाहते हैं। इसका निष्कर्ष हुआ – श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा, 'हे उद्धव, तुम संसार त्याग करके बदरिकाश्रम में जाकर तपस्या करो।' ''

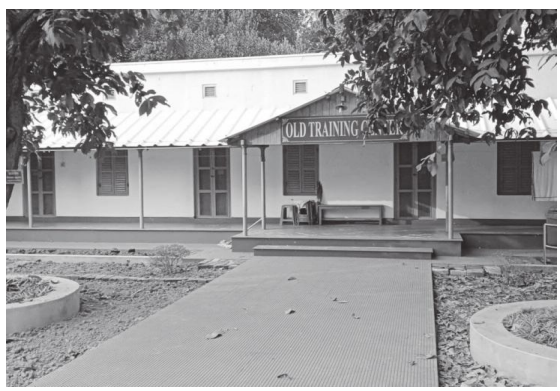

पुराना प्रशिक्षण केन्द्र

प्रशिक्षण केन्द्र में रहते समय कक्षा के उपरान्त सन्ध्या समय हमें बागवानी करनी पड़ती थी। जल के नल के पास छोटी-सी जमीन पर फूल का पौधा लगाने का दायित्व मुझे मिला। मैंने अच्छी तरह से जमीन तैयार किया। ब्रह्मचारी सुनील शिलाँग आश्रम से अच्छा गेंदा फूल का बीज लेकर आया था। मैंने प्राय: ३०/४० गेंदा का पौधा लगाया और उसमें जल दिया। अगले दिन देखा कि कई गिलहरियों ने मेरे हृष्टपुष्ट गेंदा के पौधे को प्राय: सब समाप्त कर दिया है। मैं बहुत उदास हो गया। सोचा था कि बड़ा गेंदा के फूल का माला बनाकर ठाकुर को पहनाऊँगा। सन्ध्या समय जब मैं बगीचा में था, भव महाराज घूमने जा रहे थे। मैंने अपने मन का दुख उनके सामने व्यक्त किया। उन्होंने मुझे वेदान्त शिक्षा द्वारा सान्त्वना दी।

उन्होंने कहा, ''एक सुन्दर कमरा है। उसके चारों ओर दीवार पर आईना है। उस कमरा में एक कुत्ता घुस गया। कुता आश्चर्यचकित होकर अपना चेहरा देखने लगा और अपने प्रतिबिम्ब को देखकर उसे अपना प्रतिद्वन्दी समझकर भौंकने लगा। वह जिस ओर देख रहा है, उस ओर एक कुत्ता भौंक रहा है। वह आईना के ऊपर कूदकर जोर से भौंकने लगा। मैं भी देख रहा हूँ कि तुम्हारी भी कुत्ते जैसी भौंकने की अवस्था है। कुछ देर पूर्व कक्षा में 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' कहा और अभी गिलहरी के ऊपर क्रोध करके, गेंदा फूल के समाप्त होने से शोक करके आर्तनाद कर रहे हो ! क्या यही तुम्हारा वेदान्त पढ़ना हुआ?'' मैंने कहा, ''यह वेदान्त बहुत कठिन वेदान्त है।''

स्मरण हो रहा है कि किसी दूसरे दिन बागवानी कर रहा था। भव महाराज सन्ध्या के समय घूमने के लिए जा रहे हैं। जैसा कहा जाता है – अल्पविद्या भयंकरी, मैंने उनको सुनाकर कहा, ''आचार्यवान् पुरुषो वेद।'' अर्थात आचार्य द्वारा उपदिष्ट व्यक्ति ब्रह्म को जानते हैं। (छान्दोग्य उपनिषद्)

मेरी बातें सुनकर भव महाराज पुराने ट्रेनिंग सेन्टर के कोने के मार्ग में खड़े हो गये और पूछा, ''तुमने क्या बोला? आचार्यवान् पुरुषो वेद, वे क्या जानते हैं? ब्रह्म को जानते है। इसका अर्थ है, तुम ब्रह्मज्ञ हो। वह ब्रह्म कहाँ है? स एव अधश्च स उपरिष्टात् स पाश्चात्य: स पुरस्तात् स दक्षिणत: स उत्तरत: स एवेदं सर्वम् (वह निम्न, उर्ध्व, पश्चिम, पूर्व, दक्षिण, उत्तर में है, वे ही ये सब हुए हैं)। उन्हीं ब्रह्मज्ञ को

मैं नमस्कार करता हूँ।'' यह कहकर वे चारों ओर घूम-घूमकर प्रणाम करने लगे। मैं बहुत लज्जित हुआ। सामान्य बात या घटना को घुमाकर तत्त्व की ओर वे ले जाते थे, जो मन पर छाप छोड़ देता था।

एक दिन रात्रि में भोजन परोसने के उपरान्त द्वितीय पंगत में भोजन करने के बाद आकर देखता हूँ कि भव महाराज मेरे कमरे के सामने खड़े हैं। उन्होंने कहा, ''देखो, वेदान्त की कक्षा में तुमने जो प्रश्न किया था, उसका उत्तर उस समय अच्छी तरह से नहीं दे पाया था। उसका सही उत्तर यह होगा।'' यह कहकर उन्होंने उस विषय पर विवेचन किया। उनकी निष्कपटता देखकर मैं अवाक् हो गया। शास्त्रों के ऊपर सही प्रश्न करने पर वे बहुत आनन्दित होते थे।

बागवानी के अतिरिक्त प्रशिक्षण केन्द्र के ब्रह्मचारियों को दोपहर और रात्रि में भोजन परोसना होता था और मन्दिर में सन्ध्या समय ठाकुर के गर्भगृह की सफाई करनी होती थी। एक महीने के उपरान्त सेवा में परिवर्तन होता था। मेरा प्रथम सेवा था प्रतिदिन सन्ध्या समय ठाकुर के गर्भमन्दिर की सफाई करना। उस समय गर्भ-मन्दिर के द्वार पर काँच का द्वार नहीं था। भक्तगण खुला दरवाजा से अन्दर में सिक्का (पैसा) फेंका करते थे। इसीलिए एक गमछा देकर समस्त रुपया को एकत्र करना पड़ता था। तदुपरान्त झाड़ू से धूल को साफ करना पड़ता था। अन्त में, बाल्टी में जल लेकर भींगे गमछे से घुटना पर बैठकर समस्त गर्भमन्दिर को पोछा लगाना होता था। स्वामी सुलभानन्द जी ने और एक अतिरिक्त कार्य दिया था। प्रतिदिन प्रात: नाश्ता के पश्चात् ठाकुर-मन्दिर के द्वारों के धूल को साफ करना पड़ता था। इन सब कार्यों में बहुत आनन्द मिलता था।

एक दिन दोपहर में भोजन कक्ष में भव महाराज को क्रोधित होते हुए देखा। वे तृतीय पंक्ति के पहले स्थान पर बैठते थे और उनके सामने स्वामी गंगेशानन्द जी बैठते थे। हमलोग भोजन परोसा करते थे। एक दिन गंगेशानन्दजी ने एक ब्रह्मचारी के ऊपर कटाक्ष करते हुए कुछ कहा। इस पर भव महाराज ने क्रोधित होकर कहा, ''महाराज, ये सब बच्चे अनाथ नहीं हैं। इनके अभिभावक हैं।'' मुझे सब बातें स्मरण नहीं है। उनके उच्चे स्वर से पूरा भोजनकक्ष स्तब्ध था। गंगेशानन्दजी चुप होकर भोजन करके चले गये। मादा पक्षी जिस प्रकार पंख फैलाकर अपने बच्चों की रक्षा करती है, उसी प्रकार भव महाराज ब्रह्मचारियों की रक्षा करते थे।

उसके अगले दिन एक अद्भुत दृश्य देखा। स्वामी गंगेशानन्दजी मॉन्क्स क्वॉटर की पहली मंजिल की पश्चिम सीढ़ी से चढ़ने पर बायीं ओर के कमरे में रहते थे। प्रात: साढ़े नौ बजे भव महाराज ने गंगेशानन्दजी के द्वार पर जाकर उनको पुकारा। उनके बाहर आने पर भव महाराज उनके चरणों में गिरते हुए कहा, ''महाराज, मुझे क्षमा कीजिए। कल दोपहर को भोजनकक्ष में उस प्रकार से बोलना अच्छा नहीं हुआ। उसके बाद से मेरे जप-ध्यान में विघ्न हो रहा है। मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।'' गंगेशानन्दजी ने भव महाराज को आलिंगन करते हुए कहा, ''अरे भव, क्या वह तुच्छ बात मन में रखने योग्य है? भूल जाओ।'' यह घटना मेरे सामने घटी थी। दो वरिष्ठ संन्यासियों का अद्भुत मिलन देखा। ठाकुर ने कहा है – संन्यासी का क्रोध जल के ऊपर रेखा जैसा होता है। इस घटना के सम्बन्ध में भव महाराज ने मुझसे कहा था, ''देखो, एक साथ रहने से कई बार मन-मुटाव हो जाता है, इसलिये मन में विद्वेष नहीं रखना चाहिए। भूल-भ्रान्ति तुरन्त ही समाप्त कर देना चाहिए; नहीं तो वह जप-ध्यान में विघ्न उत्पन्न करता है। अहंकार को नीचा रखकर ही साधु-जीवन को गढ़ना होता है।''

१९६५ ई. में स्वामी माधवानन्द जी जब अस्वस्थ थे, तब प्रशिक्षण केन्द्र के ब्रह्मचारियों को रात्रि ११ बजे से प्रात: ५ बजे तक उनकी सेवा का दायित्व दिया गया था। उनके सेवकों को विश्राम देने हेतु ही यह व्यवस्था हुई थी। भव महाराज ने व्यवस्था किया कि एक ब्रह्मचारी ११ से २ बजे तक और दूसरा २ से ५ बजे तक सेवा करेगा। उन्होंने मुझे रात्रि के प्रथम प्रहर में रहने के लिए नियुक्त किया। इस प्रकार एक दुर्लभ संन्यासी की सेवा करने का महासौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके कमरे में एक कोने में मेज पर बैठकर एक छोटा टेबल लैम्प जलाकर मैं श्रीरामकृष्ण-वचनामृत पढ़ता था और उनको यदि बाथरूम जाने की आवश्यकता होती, तो उसके लिए प्रतीक्षा करता था। प्रतिवर्ष एक ब्रह्मचारी भव महाराज की सेवा करता था – कमरा साफ करना, वस्त्र की धुलाई करना, नाश्ता देना इत्यादि। मेरे मन में था – तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। इसीलिए द्वितीय वर्ष में मैंने कहा, ''महाराज, मुझे एक वर्ष अपनी सेवा करने दीजिए।'' उन्होंने कहा, ''नहीं, तुमको मेरी व्यक्तिगत सेवा नहीं करनी होगी। तुम अपने कमरे में बैठकर शास्त्र-अध्ययन और मनन करो, वही मेरी सेवा होगी।'' **(क्रमश:)**

सम्मानित किया गया

कर्नाटक के **मुख्यमंत्री श्री बासवराज बोम्मई** द्वारा १ बैंगलुरु में नवम्बर, २०२१ को आयोजित एक कार्यक्रम में **रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, मैंगलुरु** को उनकी सामाजिक सेवाओं एवं मैंगलुरु शहर में स्वच्छ भारत अभियान में मुख्य योगदान हेतु **'अमृत महोत्सव राज्य पुरस्कार'** से सम्मानित किया गया। आश्रम को प्रशस्ति पत्र, स्वर्ण पदक एवं एक लाख रुपए प्रदान किया गया।

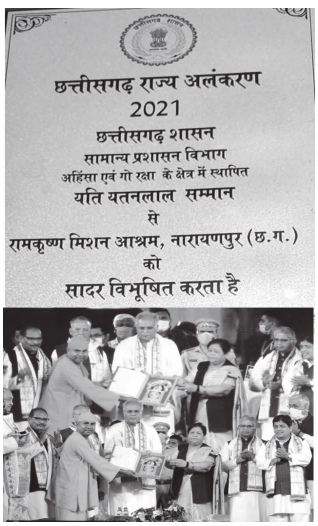

छत्तीसगढ़ की **राज्यपाल अनुसुइया उइके** द्वारा **रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर** को अहिंसा एवं गोरक्षा में सराहनीय योगदान हेतु **'यति यतनलाल सम्मान'** से सम्मानित किया गया। १ नवम्बर, २०२१ को रायपुर में आयोजित पुरस्कार समारोह में माननीय **मुख्यमन्त्री श्री भूपेश बघेल** एवं अन्य गणमान्य लोगों की उपस्थिति में आश्रम को प्रशस्ति पत्र, स्मृति-चिह्न एवं दो लाख रुपए पुरस्कारस्वरूप प्रदान किये गये।

१० नवम्बर, २०२१ को **रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर** और भिलाई स्टील प्लान्ट के संयुक्त तत्त्वावधान में रावघाट में संचालित सचल चिकित्सा सेवा के चिकित्सा कर्मचारियों के लिये नवीन आवासों का उद्घाटन किया गया।

१० नवम्बर, २०२१ को त्रिपुरा के **मुख्यमंत्री श्री विप्लव कुमार देव** द्वारा **रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन विवेक नगर, अगरतला** में जीर्णोधारित चिकित्सा भवन का उद्घाटन किया गया।

५ नवम्बर, २०२१ को **रामकृष्ण मठ, गौरहाटी, कोलकाता** के मंदिर में अलंकृत आसनों पर विराजित श्रीमाँ सारदा देवी एवं स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा की प्रतिष्ठा रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष सह-संघाध्यक्ष **स्वामी गौतमानन्द जी** महाराज के द्वारा की गयी।

१६ नवम्बर, २०२१ को **रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन** के चिकित्सालय में पुरुषों हेतु जेनरल वार्ड का उद्घाटन कार्ष्णि आश्रम, गोकुल के **स्वामी गुरुशरणानन्द जी** महाराज द्वारा किया गया और २६ नवम्बर, २०२१ को **स्वामी गौतमानन्द जी** द्वारा नर्स छात्रावास के तृतीय तल का उद्घाटन किया गया।

१८ नवम्बर, २०२१ को **रामकृष्ण मिशन आश्रम, मनसाद्वीप** में एक दोमंजिले भवन का उद्घाटन किया गया, जिसमें में आफिस और साधु-निवास हेतु कुछ कक्ष हैं।

श्री सत्य साई यूनिवर्सिटी फॉर ह्युमन एक्सीलेंस ने मानवीय एवं उत्कृष्टता हेतु **रामकृष्ण मठ, मुम्बई** को समाज-सेवा में

सराहनीय योगदान हेतु **'श्री सत्य साईं'** पुरस्कार प्रदान किया। पुरस्कार वितरण समारोह बैंगलुरु के **मुदेनहल्ली** में २३ नवम्बर, २०२१ को आयोजित किया गया, जिसमें आश्रम को पदक, प्रशस्ति पत्र एवं ५ लाख रुपए का पुरस्कार प्रदान किया गया।

राजस्थान सरकार के पर्यटन विभाग द्वारा **रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द स्मृति मन्दिर, खेतड़ी** स्थित अजीत-विवेक संग्रहालय को राजस्थान का ***'आइकोनिक मोन्योमेंट एंड हैरिटेज टूरिस्ट डेस्टिनेशिन'*** – प्रतिष्ठित स्मारक एवं विरासत पर्यटनस्थल घोषित किया गया है।

जामताड़ा मठ ने ३१ अक्तूबर एवं १ नवम्बर को आम सभा एवं अन्य कार्यक्रमों का आयोजन कर, शताब्दी वर्षोत्सव का समापन किया।

रामकृष्ण मिशन आलो

विवेकनगर, आलो, जिला - पश्चिम सिआंग, अरुणाचल प्रदेश, ७९१००१
Email : aalo@rkmm.org, Website : www.ramakrishnamissionaalo.org

सादर विनम्र निवेदन

सन् १९६६ में स्थापित रामकृष्ण मिशन आलो शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आजीविका के क्षेत्र में अरूणांचली आदिवासियों की सेवा कर रहा है। केन्द्र की प्रमुख गतिविधियों में १४०० बालक एवं बालिकाओं के लिए Non-residential English CBSE School (K.G. To XII Std.) कक्षा १ से कक्षा ८वीं तक के २५० आदिवासी बालकों के लिये छात्रावास, कक्षा १ से ४ तक के लगभग ७५० विद्यार्थियों के लिये पिछड़े/क्षेत्रों में १३ Non-formal विद्यालय वार्षिक १५००० रोगियों की दूरस्थ सेवार्थ एक धर्मार्थ चिकित्सालय एवं वार्षिक ४५००० लोगों के लिए स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रमों का संचालन शामिल है।

आठ महीनों से मौसम की खराबी, बाधित सड़क यातायात, कठिनाई से प्राप्त दैनिक आवश्यकताओं की सामग्री, अधिक वेतन पर प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति, छात्रों से न्यूनतम शुल्क एवं राज्य/केन्द्र सरकार द्वारा बहुत ही कम एवं असामयिक अनुदान मिलने के बावजूद मिशन देश के इस दूरस्थ क्षेत्र में शैक्षणिक उत्कृष्टता के केन्द्र के रूप में उभर रहा है।

हम भक्तों, शुभचिन्तकों, पूर्व छात्रों, गैर सरकारी संगठनों एवं औद्योगिक संगठनों से हार्दिक निवेदन करते हैं कि वह हमारे उत्कृष्ट प्रयास में सम्मिलित हो एवं निम्नांकित आवश्यकता की पूर्ति में सहयोग प्रदान करें –

विद्यालय के सुचारू संचालन हेतु	३ करोड़/प्रतिवर्ष
आदिवासी छात्रावास के सुचारु संचालन हेतु	१ करोड़/प्रतिवर्ष
अनुमोदित नवीन योजना	**लागत मूल्य**
१२०० विद्यार्थियों के दैनिक यातायात हेतु २ नयी बसों की खरीदी	५२.०० लाख
३०० विद्यार्थियों के लिये नये छात्रावास का निर्माण	३३.०० करोड़
कर्मचारी निवास का निर्माण (११०४ कर्मचारी)	१५.०० करोड़
चहारदीवारी एवं सड़क की मरम्मत को पूर्ण हेतु (कुल क्षेत्रफल ७४ एकड़)	३.०८ करोड़
बास्केट बॉल, बॉलीबाल, बैडमिन्टन, टेबल टेनिस एवं मल्टी जिम सुविधा युक्त इनडोर स्टेडियम का निर्माण	२.१० करोड़
फुटबॉल स्टेडियम का जीर्णोद्धार	२.६० करोड़
कम्प्यूटर (६५) प्रिंटर (१५), हेवी ड्यूटी इनवर्टर, लैब्रोट्री समान, छोटा जनरेटर, छोटी गाड़ी, स्टील अलमारी (५०) आदि	१.०० करोड़
कुल लागत	**५७.३० करोड़**

न्यूनतम सहयोग राशि भी सधन्यवाद स्वीकार्य की जाएगी और प्राप्ति रसीद भेजी जायेगी। चेक एवं ड्राफ्ट **रामकृष्ण मिशन आलो** के नाम से बनवाकर सचिव को भेज दें। **नोट :** यहाँ स्पीड पोस्ट या कुरियर सेवाएँ नहीं हैं एवं रजिस्ट्री पोस्ट से आने में दो माह का समय लगता है। अत: आपसे अनुरोध है कि **बैंक ट्रांसफर प्रणाली** का प्रयोग करें। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम की धारा ८०जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त है।

बैंक ट्रांसफर विवरण (भारतीय दानदाताओं के लिए) **:**
बैंक - State Bank of India, ब्रांच - Along (Aalo), ब्रांच कोड : 01677
खाते का नाम : Ramakrishna Mission Along (Aalo)
बचत खाता नम्बर – 11585486922, IFS Code - SBIN0001677
कृपया बैंक ट्रान्सफर की जानकारी अपने पूरे पते एवं पैन नम्बर के साथ **aalo@rkmm.org** पर ई-मेल द्वारा सूचित करें।
आप सचिव महोदय से मोबाइल नम्बर - **9436638131** एवं **8414814502** पर सम्पर्क कर सकते हैं।
श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द एवं डोनी-पालो मानवता की सेवा हेतु हम सबको आशीर्वाद प्रदान करें।

प्रभु की सेवा में
स्वामी योगीश्वरानन्द,
सचिव